॥ श्रीः ॥

जड़ावकुँवर राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

१३

मृत्यु-रहस्य

लेखक

वेदाचार्य श्रीवेणीरामशर्मा गौड

वेदविभागाध्यक्ष–गोयनका संस्कृत कालेज, वाराणसी



चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक

वाराणसी दिल्ली

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

॥ श्रीः ॥

जड़ावकुँवर राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

१३

मृत्यु-रहस्य

लेखक

वेदाचार्य श्रीवेणीरामशर्मा गौड

वेदविभागाध्यक्ष–गोयनका संस्कृत कालेज, वाराणसी



चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं विक्रेता

वाराणसी दिल्ली

प्रकाशक

चौखम्भा ओरियन्टालिया
पो० आ० चौखम्भा, पो० बाक्स नं० ३२
गोकुल भवन, के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी—२२१००१ (भारत)
टेलीफोन : ६३०२२ टेलीग्राम : गोकुलोत्सव
शाखा—बंगलो रोड, ९ यू० बी० जवाहर नगर
दिल्ली—११०००७

प्रथम संस्करण १९७८
मूल्य रु० ८—००

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्भा विश्वभारती
पो० बाक्स नं० १३९
चौक (चित्रा सिनेमा के सामने)
वाराणसी
फ़ोन : ६५४४४

JADAUKUNWAR RASTRABHASHA SERIES

NO. 13

MṚTYU-RAHASYA

(SECRET OF DEATH)

VEDĀCĀRYA VEṆĪRĀMA ŚARMĀ GAUḌA

Head, Veda Section

Goenka Sanskrit College, Varanasi

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA

A House of Oriental and Antiquarian Books

VARANASI **DELHI**

Publisher

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
P. O. Chaukhambha, Post Box No. 32
Gokul Bhawan, K. 37/109, Gopal Mandir Lane
VARANASI-221001 (India)

Telephone : 63022 Telegram : Gokulotsav

Branch—Bungalow Road, 9 U. B. Jawahar Nagar
DELHI-110007

First Edition 1978
Price : Rs. 8-00

Printers—Srigokul Mudranalaya, Varanasi.

समर्पण

परम माननीय सर्वतन्त्रस्वतन्त्र पण्डितप्रवर

श्रीयुत बदरीनाथजी शुक्ल

न्याय-वेदान्ताचार्य, एम० ए०

(कुलपति-सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी)

महोदयकी पवित्र सेवामें

'मृत्यु-रहस्य'

सादर समर्पित

वेणीराम गौड

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

दो शब्द

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः' (गीता २।२७) के अनुसार जो उत्पन्न हुआ है, उसकी मृत्यु ध्रुव है । अतः जब मनुष्य उत्पन्न होता है, तो उसके साथ ही मृत्यु भी उत्पन्न होती है। इसलिये मनुष्यका शरीर सर्वदा नहीं रहता है। उसे कभी न कभी शरीर छोड़ना ही पड़ता है। साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या है, बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंको भी शरीर धारण करनेके कारण शरीरका त्याग करना पड़ा। अतः मृत्युसे कोई भी बच नहीं सकता। इसलिये प्राणिमात्र की मृत्यु अवश्यम्भावी है। अतः मृत्युसे किसीको भी डरना नहीं चाहिये। जो मनुष्य मृत्युसे डरते हैं, उनके बारेमें लिखा है—

मृत्योर्विभेषि किं बाल न स भीतं विमुञ्चति।
अद्य वाऽब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः॥

(पञ्चतन्त्र, मित्रभेद)

'अरे मूर्ख ! तूँ क्या मृत्सु से डरता है, वह (मृत्यु) भयभीतको नहीं छोड़ता। आज अथवा सौ वर्षके बाद प्राणियोंकी मृत्यु होना निश्चित है।'

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते।
अद्य वाऽब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः॥

(श्रीमद्भागवत १०।१।३८)

'वीर ! जो जन्म लेते हैं, उनके शरीरके साथ ही मृत्यु भी उत्पन्न होती है। आज अथवा सौ वर्षके बाद प्राणियोंकी मृत्यु निश्चित है।'

मनुष्य जीवनपर्यन्त प्राणिमात्रका मरण देखता है, फिर भी वह अपनेको मरणहीन मानकर सर्वदा जीवित रहना चाहता है। अतएव भगवान् व्यासने कहा है—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

(महाभारत, वनपर्व ३१४।११६)

'संसारमें प्रतिदिन प्राणी मृत्युको प्राप्त होकर यमराजके यहाँ जा रहे हैं, फिर भी बचे हुए मनुष्य सर्वदा जीवित रहना चाहते हैं, इससे बढ़कर और क्या आश्चर्य होगा।'

मृत्यु नाम ही बड़ा भयानक है। मृत्युका भय पामरसे लेकर विद्वान् तक सबको होता है। मृत्यु से भयभीत होकर एक बार रावणने भी सृष्टिकर्ता ब्रह्मासे अपनी अमरताके लिये वर माँगा था—

भगवन् प्राणिनां नित्यं नान्यत्र मरणाद् भयम्।
नास्ति मृत्युसमः शत्रुरमरत्वमहं वृणे॥

(वाल्मीकिरामायण ७।१०।१६)

'भगवन् ! प्राणियोंको मृत्युके अतिरिक्त और किसीका भय नहीं होता, इसलिये मैं अमर होना चाहता हूँ, क्योंकि मृत्युके सदृश दूसरा कोई शत्रु नहीं है।'

किन्तु ब्रह्माने रावणको अमर होनेका वरदान नहीं दिया।

जो मनुष्य मृत्युके रहस्य अथवा तत्त्वको नहीं समझते, वे ही मृत्युसे डरते हैं। जो मृत्युके रहस्य अथवा तत्त्वको ठीक-ठीक समझते हैं, वे मृत्युसे डरते नहीं हैं, अपितु वे मृत्युका स्वागत करते हैं।

सन्त कबीरदासजी मृत्यु के रहस्य को भलीभाँति जानते थे, अतएव वे मृत्युको वरदान समझते थे। इसीलिये उन्होंने लिखा है—

जिस मरनेसे जग डरे, मेरे मन आनन्द।
कब मरिहौं कब भेटिहौं, पूरन परमानन्द ॥

वस्तुतः विचार किया जाय, तो मृत्युमें अपार आनन्द है। अतः मनुष्यको मृत्युसे भयभीत न होकर सर्वदा मृत्यु के लिये तैयार रहना चाहिये। जो मृत्युके लिये तैयार रहते हैं, उन्हींका वास्तविक जीवन है।

वर्तमान जीवनका अन्त ही मृत्यु है, इस बातको सर्वदा स्मरण रखना चाहिये और मृत्युको कभी भी भूलना नहीं चाहिये।

दो बातनको भूल मत जो चाहत कल्यान।
नारायण इक मौतको, दूजे श्री भगवान् ॥

'मृत्युः सर्वहरश्चाहम्' (गीता १०।३४) के अनुसार मृत्यु भगवान्का ही स्वरूप है। अतः सबको मृत्युका स्वागत करना चाहिये। जो मृत्युका स्वागत करते हैं, वे इस संसारमें जीवन-पर्यन्त सुख-शान्तिसे रहते हैं और मृत्युके बाद परलोकमें मोक्ष प्राप्त करते हैं।

मेरी चिरकाल से अभिलाषा थी कि "मैं 'मृत्यु-रहस्य' नामकी लघु-पुस्तिका लिखूँ, जिसमें मनुष्यकी मृत्युके बाद होनेवाली यात्रा आदि का उल्लेख हो।" मृत्युके बाद जीव किस मार्गसे कहाँ और कब जाता है तथा उसकी क्या गति होती है एवं उसे किस लोककी प्राप्ति होती है, इत्यादि विषयोंका ज्ञान बहुत कम लोगों को होता है। अतः सभीको उक्त विषयोंका यथार्थ ज्ञान सरलतासे हो जाय, इसी दृष्टि से 'मृत्यु-रहस्य' पुस्तिका लिखी गयी है। यदि इस पुस्तिकासे पाठकोंका किञ्चिन्मात्र भी लाभ हुआ, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

इस पुस्तिकामें जो सामग्री है, उसका चयन वेदों, पुराणों, स्मृतियों और अन्य धर्मग्रन्थोंसे किया गया है। अतः विशेष जिज्ञासुओंको वेदों, पुराणों, स्मृतियों और धर्मग्रन्थोंका अवलोकन करना चाहिये।

मैं चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसीके अध्यक्ष महोदयको विशेष धन्यबाद देता हूँ, जिन्होंने इस महत्त्वपूर्ण लोकोपकारी 'मृत्यु-रहस्य' पुस्तकको प्रकाशित कर मानवमात्रका विशेष कल्याण किया है।

आषाढ़ शुक्ला गुरुपूर्णिमा
सं० २०३५

वेणीराम गौड वेदाचार्य

उत्पन्न होनेवाले प्रत्येक प्राणी को मृत्यु का भय होता ही है। अन्य किसी वस्तु का ज्ञान न होने पर भी मृत्यु का भय होता ही है। ऐसा क्यों होता है? इसका उत्तर यह भी हो सकता है कि पहले उसने इस मृत्युलोक में जन्म लिया था और वह मरा भी था। मृत्यु के समय जिन कष्टों का भोग उसे हुआ था, वे वासनारूप में उसमें विद्यमान रहते ही हैं।

इस लोक का नाम है 'मर्त्यलोक'। जिसका जन्म होगा उसकी मृत्यु अवश्य होगी। अतः प्राणी को जन्म से डरना चाहिये, क्योंकि मृत्यु का भय जन्म लेने के पश्चात् होता है। यदि जन्म न होगा तो मृत्यु भी नहीं होगी। इसलिये पहले जन्म का ही रहस्य जान लेना चाहिये। इन दोनों में एक का रहस्य हमको मालूम हो जाय, तब दूसरे का रहस्य सुगमता से मालूम हो सकता है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥

(गीता २।२७)

'जन्म लेने वाले की मृत्यु अवश्यंभावी है और मरने वाले का जन्म निश्चित है अर्थात् जब तक भगवत्कृपा या ज्ञान नहीं प्राप्त होता, तब तक जन्म और मृत्यु का चक्र चलता ही रहता है। इसलिये अर्जुन ! जिस बात पर किसी का वश नहीं, उसके लिये तुम्हें शोक करना उचित नहीं है।'

इस श्लोक में भगवान् ने पहले 'जातस्य' लिखा है अर्थात् जन्म लेने वाले की मृत्यु होती ही है। जन्म न लेने पर मृत्यु किसकी होगी? अतः जन्म का रहस्य क्या है, इसी बात का अन्वेषण करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में जन्म और मृत्यु का कारण सकाम कर्म बतलाया है। यथा—

प्रेरणा से जब प्रकृति में विक्षोभ होता है, तब उस क्षोभ में महत्तत्व और उससे अहङ्कार होता है। वह अहङ्कार सात्त्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार का होता है।

'वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेति यद्भिदा।'

(श्रीमद्भागवत २।५।२४)

तामस अहङ्कार से पञ्चतन्मात्राएँ, शब्दादि तथा आकाशादि पञ्च-महाभूतों की उत्पत्ति, राजस अहङ्कार से इन्द्रियों की तथा सात्त्विक अहङ्कार से इन्द्रियाधिष्ठातृदेवता और मन की उत्पत्ति होती है। इसी का नाम सर्ग है अर्थात् इसी प्रकार सृष्टि-प्रपञ्च बढ़ता है। ईश्वर का ही एक नाम 'विराट्-पुरुष' है। उस विराट्-पुरुष की विशेष शक्ति से ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है और उन्हीं ब्रह्मा के द्वारा इस चराचर जगत् की सृष्टि की जाती है। इसी का नाम 'विसर्ग' है। चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, द्वीप, समुद्र आदि की मर्यादा के पालन से भगवान् का जो उत्कर्ष होता है, वही 'स्थान' कहलाता है। भक्तों पर अनुग्रह करना 'पोषण' है। जीवों को बन्धन में डालने वाली कर्म की वासनाओं को 'ऊति' कहते हैं। मन्वन्तरों के अधिपतियों के शुद्ध धर्मपूर्वक प्रजा-पालन को ही 'मन्वन्तर' कहते हैं। भगवान् के विभिन्न अवतारों और उनके भक्तों के वर्णन और तत्सम्बन्धी कथाओं को 'ईश कथा' कहते हैं। भगवान् भोगनिद्रा द्वारा जब शयन करते हैं, तब जीवों का अपनी उपाधियों (शक्तियों) के साथ उनमें लीन होने को ही 'निरोध' कहते हैं। अज्ञानजनित कर्त्तापन और भोक्तापन को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थिति को 'मुक्ति' कहते हैं। जिस तत्त्व से इस चराचर जगत् की उत्पत्ति और प्रलय होता है, वही 'परब्रह्म आश्रय' है। इससे यह सिद्ध होता है कि सकाम कर्म करने से कर्मफल-प्राप्ति ही इस संसार में प्राणियों के आवागमनरूप बन्धन का कारण है। यह सृष्टि अनादिकाल से चली आ रही है, अतः पूर्व कल्प में किये हुए कर्मों

इतना कहकर जब अपनी योगमाया से स्वरूप धारण करनेवाले विष्णु (परब्रह्म) अन्तर्हित हो गये, तब ब्रह्माजी ने 'यथापूर्वम्' अर्थात् पूर्व कल्प के अनुसार ही उन्होंने पुनः सृष्टि की।

अन्तर्हितेन्द्रियार्थाय हरये विहिताञ्जलिः।
सर्वभूतमयो विश्वं ससर्जेदं स पूर्ववत्॥

(श्रीमद्भागवत २।९।३८)

पूर्व कल्प में जो जीव सत्त्व-प्रधान थे, वे देवता हुए, रजोगुण-प्रधान जीव मनुष्य और तमोगुण-प्रधान जीव नारकीय पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, वृक्षादि योनियों में गये। यही जन्म का रहस्य है।

मृत्युका रहस्य

'मृत्यु' शब्द की व्युत्पत्ति से ही 'मृत्यु का रहस्य' मालूम होता है। 'मृङ् प्राणत्यागे' धातु से 'त्युक्' प्रत्यय करने पर 'मृत्यु' शब्द बनता है। मृत्यु दो तरह की होती है—एक तो स्वेच्छया देहत्याग और दूसरी साधारण मृत्यु। योगी लोग देह का त्याग करते हैं, किन्तु सर्व-साधारण की मृत्यु होती है। स्वेच्छा से देहत्याग करने वालों का पुनर्जन्म नहीं होता। क्योंकि वे ज्ञान-द्वारा अपने कर्मों को भस्म कर देते हैं। गीता में लिखा भी है—

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा॥

(गीता ४।३७)

'हे अर्जुन! जिस तरह प्रज्वलित अग्नि लकड़ियों को जलाकर भस्म कर देती है, उसी तरह ज्ञानरूप अग्नि सभी कर्मों को जलाकर भस्म कर देती है।'

अर्थात् कर्म करने वालों को उन कर्मों का फल प्राप्त नहीं होता। इसलिये कर्मफल भोगने को अवशिष्ट नहीं रहता और जीवात्मा

परब्रह्म में सदा के लिये लीन हो जाता है और वह पुनः इस मर्त्यलोक में नहीं आता। यह स्वेच्छा से देहत्याग करने वालों की गति का वर्णन हुआ, परन्तु 'मृत्यु क्या वस्तु है' इसका रहस्य जानना चाहिये।

इस स्थूल शरीर में चेतन शक्ति सम्पन्न जो जीव है, उसके इस स्थूल शरीर से निकल जाने का नाम 'मृत्यु' है। यद्यपि जीव ईश्वर का अंश है और अविनाशी है (**ईश्वर अंश जीव अविनाशी**), तथापि माया के वशीभूत होने के कारण यह अपने अविनाशीपन को भूल गया है और अहङ्कार के वशीभूत यह अपने को कर्त्ता और भोक्ता समझता है। फलस्वरूप कर्म-फल को भोगने के लिये अनेक योनियों में इसे भ्रमण करना पड़ता है।

यह जीव मन का सहचर है। मन इन्द्रियों का अधिपति है। मन के निर्माण के विषय में छान्दोग्योपनिषद् (६।५।१) में लिखा है—

'अन्नमशितं त्रेधा विधीयते, तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत् पुरीषं भवति, यो मध्यमस्तन्मासं, योऽणिष्ठस्तन्मनः।'

अर्थात् खाया हुआ अन्न तीन भागों में विभक्त हो जाता है, उसका स्थूल अंश 'पुरीष' बनता है। मध्यम अंश से 'रक्त' और 'मांस' होता है तथा इसका सूक्ष्म अंश 'मन' का निर्माण करता है। तात्पर्य यह है कि जो कुछ पदार्थ खाया जाता है अथवा पीया जाता है, वह तीन भागों में विभक्त हो जाता है और तदनुरूप शरीर में धातुओं का निर्माण होता है। मन इन्द्रियों का अधिष्ठाता है, इसलिये सबसे अधिक प्रभाव हमारे मन पर पड़ता है। सात्त्विक पदार्थ खाने से मन सात्त्विक गुणों से युक्त होता है, राजस पदार्थों से राजसिक गुण आते हैं और तामस पदार्थों से तामसिक स्वभाव बनता है।

मन इन्द्रियों का राजा है, अतः मन की प्रवृत्ति अपने गुणों के अनुसार होती है तथा यह मन अपने अधीनस्थ इन्द्रियों से अपने सत्त्व, रज और तम- इन त्रिगुणों के अनुसार कर्म करवाता है। अतः वस्तुतः

यही अपने सहचर जीव को बन्धन में डाल देता है। शास्त्रों में लिखा है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यैर्निर्विषयं मनः॥

(ब्रह्मबिन्दूपनिषत् २।३)

'मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है। विषयासक्त मन बन्धन के लिये है और निर्विषय मन मुक्त माना जाता है।'

जीव जब विषयों में आसक्त रहता है, तब विषय वासना-रूप से उसमें वर्त्तमान रहते हैं तथा उन विषयों को भोगने के लिये जीव को पुनः शरीर धारण करना आवश्यक हो जाता है। जब मन निर्विषय रहता है, तब जीव को भोक्तृत्व का अभिमान नहीं रहता और फिर वह अपने अंशी ईश्वर में लीन हो जाता है, यही 'मुक्ति' है। छान्दोग्योपनिषद् में इसकी मीमांसा करते हुए कहा गया है—

मृत्यु के पश्चात् शरीर को अग्नि में दग्ध किया जाता है। उस अग्निशिखा के साथ सर्वप्रथम जीव उड़कर द्युलोक में जाता है और वहाँ वह मेघ में जाकर वर्षा होकर बरस जाता है। तत्पश्चात् पृथिवी के साथ सम्पर्क पाकर वह वनस्पति के रूप मे पैदा होता है। वे वनस्पतियाँ अपने-अपने कर्मानुसार पशु, पक्षी, मनुष्यादि प्राणियों के द्वारा खाई जाकर जठराग्नि के विधान के द्वारा वीर्य में परिणत हो जाती हैं, जो नारी के गर्भाशय में जाकर शरीर धारण करता है। इस प्रकार बालपन से युवावस्था, युवावस्था से वृद्धत्व एवं वृद्धत्व से जीव पुनः मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

अब जो जीव इस जीवन में वेदविहित मार्ग का अनुसरण करके जीवन-यापन करते हैं, वे भक्त प्रकाशमय लोक को प्राप्त होते हैं। वे प्रकाश से दिन में, दिन से शुक्ल पक्ष में, शुक्ल पक्ष से उत्तरायण सूर्य

में, वहाँ से चन्द्रलोक में और चन्द्रलोक से विद्युत्-सदृश धाम को प्राप्त होते हैं। इसे हमारे शास्त्रों ने 'देवयान-मार्ग' बताया है। केवल परमात्मा के भक्त ही इस मार्ग से प्रयाण करके दिव्य लोकों को प्राप्त होते हैं।

दूसरे प्रकार के जो मनुष्य निष्काम सर्वभूतहिते रत कर्मों को छोड़कर सकाम कर्म करते हैं अर्थात् कुएँ, तालाब, स्कूल, धर्मशाला, अस्पताल आदि का निर्माण करवाते हैं, वे मृत्यु के पश्चात् सूक्ष्म शरीर से धूम्र में रहकर, धूम्र से रात्रि में, रात्रि से कृष्णपक्ष में, कृष्णपक्ष से दक्षिणायन सूर्य के मार्ग का अवलम्बन करके वहाँ से मास में, मास से पितृलोक में, पितृलोक से चन्द्रलोक में और वहाँ नियत समय तक अपने शुभ कर्मों का फल उपभोग करने के पश्चात् आकाश में, आकाश से वायु में, वायु से धूम्र में, धूम्र से मेघ में, मेघ से वनस्पति में, वनस्पति से वीर्य में, वीर्य से माँ के गर्भ में प्रवेश करके पुनः इस संसार में वापस लौट आते हैं।

तीसरे प्रकार के मनुष्य वे हैं, जो नाना प्रकार के पापकर्म किया करते हैं। वे मृत्यु के पश्चात् ऊपर न उठकर यहीं पृथिवी पर पड़े रह जाते हैं। इसी का नाम 'अधोमार्ग' है। इस मार्ग को प्राप्त होकर जीव कर्मानुसार कीट-पतङ्ग, वृक्षादि नीच योनियों को प्राप्त हो जाता है।

अब उपर्युक्त मार्ग और लोक सब हैं क्या? इस संसार-चक्र में सूर्य-लोक, चन्द्रलोक, पितृ-लोक एवं अन्य नक्षत्रादि विश्राम स्थल हैं, जिनमें क्रमशः होकर यह आत्मा एक दूसरे में विश्राम करता हुआ चलता है। इन्हीं क्रम-विशेषों को शास्त्रों ने 'पक्ष' का नाम दिया है।

अपने कर्मों के अनुसार ऊर्ध्व और अधोगतियों को प्राप्त होता हुआ जीव किन-किन लोकों में होकर गुजरता है, उन सबका नामकरण असंभव है। अतः यहाँ मनुष्योंको दृश्यमान जो चन्द्र-सूर्यादि लोक

हैं, इनमें से कुछ लोक प्रकाशमय हैं और कुछ तमोमय। अतः सूर्य-लोक का मार्ग प्रकाशमय माना गया है। वहाँ पर सब मुक्ति-प्राप्त जीवों का निवास है। अतः इसे 'देवयान मार्ग' कहा गया है। अग्नि की ज्वाला के साथ उठनेवाला जीव जिस देवयान मार्ग से प्रयाण करता है, उसे 'अर्चि-मार्ग' कहते हैं, जो 'सूर्य-लोक' को जाता है। सूर्य यहाँ 'प्रकाश लोक' का प्रतीक है। इस देवयान मार्ग पर चलने वाला जीव स्वप्नावस्था में स्वतन्त्र चलता जाता है और परमात्मा की इस सृष्टि में राजकुमार की भाँति विचरता है। यद्यपि इस लोक में भौतिक शरीर नहीं होता, तो भी जीव अपने दिव्य सङ्कल्पमय शरीर से परमात्मा की सारी सृष्टि में भ्रमण करके आनन्द भोगता है। ऐसे जीवों के भी कई प्रकार हैं। जिस जीवका संवन्ध ऐसा है जैसा राजा के साथ प्रजा का होता है, वह सालोक्य मुक्ति, जिसका सभासद् जैसा होता है उसे सामीप्य मुक्ति, जिसका अङ्ग से अङ्गी की भाँति होता है उसे सारूप्य मुक्ति, एवं जो अन्तिम मिलाप का पद है उसे सायुज्य मुक्ति कहते हैं। इस प्रकार ऐसा मुक्त जीव सूर्य से चन्द्रलोक और वहाँ से विद्युल्लोक होकर ब्रह्मलोक में स्वयं प्रजापति से जा मिलता है।

दूसरा देवयान से बाईं ओर 'पितृयान मार्ग' है। प्रथम मार्ग का प्रारम्भ तो अग्नि की ज्वाला से होता है किन्तु इस दूसरे का प्रारम्भ धूम्र से होता है। अतः इसे 'दक्षिणायन' या 'धूम्र-मार्ग' कहते हैं। यह भी 'ऊर्ध्व मार्ग' है, किन्तु यह सड़क पूर्णतः तमोमयी है, इसमें प्राणी सुषुप्ति अवस्था में अचेत-सा रहता है। किन्तु जब पुनर्जन्म का समय सन्निकट होता है, तब वह स्वप्नावस्था को प्राप्त होकर अपने जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों का प्रत्यक्ष अनुभव करने लगता है। जन्म के समय इस स्वप्नावस्था से विलग होकर जाग्रत् अवस्था को प्राप्त हो जाता है, किन्तु इन्द्रियों की अपूर्णता के कारण उसकी पूर्वजन्म की स्मृति लुप्त हो जाती है।

तीसरा मार्ग 'अधोमार्ग' है। इसमें पापी जीव ऊर्ध्वगति को प्राप्त ही नहीं होता, अपितु पृथिवी पर ही रहकर कीट-पतङ्ग अदि नीच योनियों को प्राप्त हो जाता है।

शव को अग्नि में भस्मीभूत करने के पश्चात् ही ये सारे मार्ग फटते हैं। जब जीव ज्वाला से उठता है तब अर्चिमार्ग के द्वारा ऊर्ध्व लोकों को, धूम्र से उठता है, तब तमोमय मार्ग के द्वारा चन्द्रलोक या पितृलोक को, किन्तु जब वह भस्म होकर पृथिवी पर ही पड़ा रहता है, तब अधोमार्ग ग्रहण कर कीट-पतङ्ग आदि योनियों को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार वेद-विहित जीवन व्यतीत करने वाला जीव 'देवयान मार्ग' का अनुसरण करके मुक्ति का अधिकारी हो जाता है और आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाता है। किन्तु जीव जो सकाम यज्ञ, दान, जप, तप करते हैं, वे पितृयान मार्ग पर चलकर अनेक दिव्य लोकों का आनन्द उपभोग करके पुनः जन्म धारण कर लेते हैं और जो इन सत्कर्मों का परित्याग कर देते हैं, वे अधोमार्ग पर अग्रसर होकर बार-बार कीट-पतङ्गादि योनियों में जन्म लेकर मरते जीते रहते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि ये पितर हैं क्या? हमारे माता-पिता ही केवल पितर नहीं हैं, अपितु जितने भी दिव्य तत्त्व हमारे जन्म में हेतु होते हैं, वे सब पितर हैं। इनमें सबसे प्रथम पितर सूर्य और चन्द्रमा का जोड़ा है, जो उष्णता और तरलता का सम्मिश्रण है। दूसरे पितर संवत्सर हैं, जो उत्तरायण और दक्षिणायन के मिलाप हैं। तीसरे पितर मास हैं, जो कृष्ण और शुक्ल पक्ष का मिलाप करते हैं एवं चौथे पितर अन्न हैं, जो रज और वीर्य का सम्मिश्रण (दंपती) हैं। भौतिक माता-पिता की भाँति इन पितरों में भी नर और मादा का जोड़ा होता है—सूर्य पिता, चन्द्रमा माता, उत्तरायण पिता, दक्षिणायन माता, शुक्ल पक्ष पिता, कृष्ण पक्ष माता, दिन पिता, रात्रि माता, वीर्य पिता, रज माता।

अब यहाँ पिताओं की पंक्ति 'प्राण' एवं माताओं की पंक्ति 'रात्रि' कहलाती है। प्राण है प्रजापति का आध्यात्मिक तत्त्व और रात्रि है प्रजापति का शारीरिक तत्त्व, जो परिवर्तनशील है। अतः पितृयान मार्ग पर चलने वाला तो शारीरिक ऊर्ध्व गति पाता है एवं देवयान पर चलने वाला मानसिक ऊर्ध्व गति प्राप्त करता है, जो मुक्ति का शाश्वत आनन्द है।

जिस प्रकार भौतिक माता-पिता हमारी उत्पत्ति में कारण होते हैं, इसी प्रकार मरने के पश्चात् हमें उपर्युक्त माता-पिताओं की गोद में भी जाना पड़ता है। ये समस्त पितर प्रजापति-रूप हैं। अग्नि में जलने के पश्चात् इनसे मिलाप होता है. अत: ये 'अग्निष्वात्त' कहलाते हैं।

प्रश्नोपनिषद् में पिप्पलाद मुनि ने कात्यायन से पहला प्रश्न किया था कि हम कहाँ से उत्पन्न होते हैं और कौन हमारे जनक-जननी हैं। ऋषि कहने लगे कि सृष्टि के आदि में प्रजापति के मन से इच्छा हुई—**"एकोऽहं बहु स्याम्"** अर्थात् एक हूँ, अनेक हो जाऊँ। तब उसने प्राण (फोर्स) और रात्रि (मैटर) का एक जोड़ा उत्पन्न किया और सोचा कि दोनों से मेरी सन्तानों की बढ़ोतरी होगी।

सर्वप्रथम सूर्य जगत् का प्राण है, जिसकी किरणें मनुष्यों के प्राणों की रक्षा एवं शरीर में प्रविष्ट होकर निरोगता प्रदान करती हैं एवं अग्नि-स्वरूप होकर हमारी पाचन-क्रिया को नियंत्रित करके प्राणों की रक्षा करती हैं। चन्द्रमा भी इसी प्रकार विकसित होकर सबको रात्रि प्रदान करता है। अतः सूर्य और चन्द्रमा का जोड़ा मिलकर संसार में प्राण और रात्रि के द्वारा उत्पत्ति और विनाश का कार्य करते रहते हैं। दूसरा पितर संवत्सर है, जिसकी उत्पत्ति वास्तव में सूर्य और चन्द्रमा की परिक्रमा द्वारा होती है। सूर्य की परिक्रमा से संक्रान्ति एवं चन्द्रमा की परिक्रमा से तिथिरूप संवत्सर उत्पन्न होता है। यहाँ उत्तरीय पथ नर एवं दक्षिण पथ नारी है और मनुष्य इसी के अन्तर्गत जीवन और मृत्यु को प्राप्त होता रहता है। यहाँ वेद-

विहित कर्म करने वाले को संवत्सर, उत्तरायण मार्ग से मुक्ति की ओर, एवं सकाम कर्म करने वाले को दक्षिणायन मार्ग से माता की भाँति शारीरिक भोग दिलाता है, जिन्हें भोगने के पश्चात् प्राणी पुनः संसार में लौट आता है। इस प्रकार संवत्सर के अन्तर्गत यह आवागमन का कार्य चलता रहता है।

अब संवत्सर के अन्तर्गत ही तीसरे पितर भी हैं। इसमें शुक्ल पक्ष पिता एवं कृष्ण पक्ष माता है। इन्हीं दोनों में प्रजापति-सन्तान अपने समस्त यज्ञादि कर्म सम्पादन करती रहती हैं। अब चौथे पितर दिन और रात्रि हैं, जो तीसरे संवत्सर के अन्तर्गत कार्य करते रहते हैं। इसमें दिन पिता और रात्रि माता है। इन्हीं में संसार के सारे कार्य चलते हैं। अब पाँचवाँ पितर अमृत है, जिसके अन्तर्गत वीर्य पिता एवं रज माता है। अन्न-पान करने से ही रज-वीर्य की उत्पत्ति होती है और इनके सम्मिश्रण से ही इस संसार की उत्पत्ति होती है। अतः इन्हीं पितरों की सहायता से संसार में उत्पत्ति-प्रलय का कार्य चलता है और हम इन्हीं की सहायता से जन्म के पश्चात् मृत्यु और मृत्यु के पश्चात् जन्म लेते रहते हैं। अपने शास्त्रों के अनुसार मृत्यु के पश्चात् जीव का इस प्रकार संचरण होता चलता है।

मृत्यु के उपरान्त प्राणी की क्या अवस्था होती है ?

प्राणियों के तीन शरीर होते हैं—स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर। स्थूल शरीर यह दृश्यमान पार्थिव शरीर है, जो माता-पिता से भुक्त अन्न-जलादि पदार्थ हैं, उनके परिणाम से उत्पन्न शुक्र-शोणित के सम्मिश्रण से उत्पन्न होता है।

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंकुलम् ।
पूर्णं मूत्रपुरीषाभ्यां स्थूलं निन्द्यमिदं वपुः ॥

(विवेकचूड़ामणि ८९)

सूक्ष्म शरीर आकाशादि पञ्चमहाभूत, पञ्चकर्मेन्द्रिय, पञ्च-ज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार आदि तत्त्वों से बना है, इसे 'लिङ्ग शरीर' भी कहते हैं। यथा—

वागादिपञ्च श्रवणादिपञ्च प्राणादिपञ्चाभ्रमुखानि पञ्च।
बुद्ध्याद्यविद्यापि च कामकर्मणी पुर्यष्टकं सूक्ष्मशरीरमाहुः॥
(विवेकचूड़ामणि ९८)

सत्त्व, रज और तम आदि तीन गुण क्रिया-रूप हैं, जिनसे मानसिक विकार उत्पन्न होते हैं और इनके अनुसार ही जीव क्रियाशील होता है। सत्त्वगुण प्रकाश, आत्मानुभव, परम शान्ति आदि गुणों के रूप में रजोगुण कर्म के प्रेरक रूप में एवं तमोगुण अज्ञान, आलस्य, जड़ता आदि के रूप में प्रतीत होता है। इन तीन गुणों के निरूपण से अव्यक्त का वर्णन किया गया है और ये ही तीनों आत्मा के कारण शरीर हैं। यथा—

अव्यक्तमेतत्त्रिगुणैर्निरुक्तं तत्कारणं नाम शरीरमात्मनः।
सुषुप्तिरेतस्य विभक्त्यवस्था प्रलीनसर्वेन्द्रियबुद्धिवृत्तिः॥
(विवेकचूड़ामणि १२२)

पञ्चभूतात्मक शरीर से जब प्राण निकल जाते हैं, तो जीव को 'आतिवाहिक शरीर' प्राप्त होता है। इस शरीर में पृथिवी और जल—ये दो स्थूल तत्त्व नहीं रहते। इसका निर्माण केवल तीन सूक्ष्म तत्त्वों से अर्थात् तेज, वायु और आकाश से होता है। पञ्चभूतात्मक शरीर में पाँच तत्त्वों का जैसा घनिष्ठ संश्लेष होता है, वैसा तीन सूक्ष्म तत्त्वों का इस 'आतिवाहिक शरीर' में नहीं होता। विष्णुधर्मोत्तर पुराण का वचन है कि—

तत्क्षणादेव गृह्णाति शरीरमतिवाहिकम् ।
ऊर्ध्वं व्रजन्ति भूतानि त्रीण्यस्मात्तस्य विग्रहात् ॥
अतिवाहिकसंज्ञोऽसौ देहो भवति भार्गव ।
केवलं तन्मनुष्याणां नान्येषां प्राणिनां क्वचित् ॥

तात्पर्य यह है कि मृत्यु होते ही मनुष्यों को 'आतिवाहिक शरीर' प्राप्त हो ज़ाता है। इस स्थूल शरीर से तीन गुरुता से रहित तेज, वायु और आकाश ऊपर उड़ जाते हैं और दो गुरु तत्त्व जल तथा पृथिवी नीचे गिर जाते है। अतः मृत प्राणी के उद्देश्य से मृत्यु के द्वितीय दिन से जल देने के समय का मन्त्र यह है—

आकाशस्थो निरालम्बो वायुभूतो निराश्रयः ।
इदं नीरमिदं क्षीरं स्नात्वा पीत्वा सुखी भव ॥

अर्थात् हे प्रेत ! तुम निरालम्ब, आश्रयहीन, वायु के रूप में आकाश में रह रहे हो, अतः मैं तुमको जल और दूध देता हूँ। इस जल से स्नान करके दूध पीओ और सुखी रहो।

मृत्यु के बाद 'आतिवाहिक शरीर' मनुष्य को ही मिलता है, पशु-पक्षियों को नहीं। जब तक मनुष्य की श्राद्धादि क्रिया नहीं होती, तब तक वह इसी आतिवहिक वायुमय शरीर में रहता है और इसी वायुमय शरीर में वह घूमता रहता है। इसी को 'प्रेत' कहते हैं। इस प्रेत योनि में मुक्ति प्राप्त करनेवाले ज्ञानी और भगवत्कृपा-प्राप्त भक्तजनों के अतिरिक्त सभी मनुष्यों को जाना पड़ता है। प्रेत योनि में मृत प्राणी की स्थिति एकत्र नहीं रहती। उसके निमित्त दिये हुए जल और अन्न से उसकी तृप्ति होती है। अतः मृत प्राणी के निमित्त छः स्थानों पर पिण्डदान का विधान है। प्रथम मृत्यु के स्थान में, द्वितीय घर के बाहर द्वार पर, तृतीय रास्ते में विश्राम स्थल पर, चतुर्थ श्मशान में पहुँचने पर, पञ्चम श्मशान भूमि पर और षष्ठ चिता

पर शव को रखने पर। इन छः स्थानों पिण्ड से आतिवाहिक शरीरस्थ मृत प्राणी को शान्ति मिलती है। यद्यपि एक ही भूत वायु से इस शरीर का निर्माण होता है और एक भूत से बने हुए शरीर में भोग-शक्ति नहीं होती, परन्तु इस आतिवाहिक शरीर के साथ कर्त्तृत्व और भोक्तृत्वाभिमानी जीवात्मा का सम्वन्ध रहता है, इसलिये आतिवाहिक शरीर में भोक्तृत्व शक्ति रहती है। इसके पश्चात् दश दिनों तक उसके निमित्त प्रतिदिन तिलमिश्रित जल और पिण्ड दिये जाते है। इन पिण्डों से मृत प्राणी का एक देह निर्माण होता है, जिसको 'भोग शरीर' कहते हैं। इसलिये दश दिन के पिण्डों से जो शरीर बनता है, वह पृथिवी आदि पञ्चभूतों के सूक्ष्म तत्त्वों से बनता है। उसी शरीर से स्वर्ग का सुख या नरक की यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं।

कुछ महर्षियों का यह भी मत है कि इस भौतिक शरीर के भीतर तेजस् शरीर रहता है और मृत्यु के समय यमदूत उसे बलपूर्वक शरीर से निकाल लेते हैं और उसी को स्वर्गीय सुख या नारकीय यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। यथा—

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात्।
धर्मी पुण्येन स्वर्याति पापेन निरयं व्रजेत्॥

'अंगुष्ठमात्र के शरीर के उस पुरुष को यमराज बलपूर्वक निकालते हैं और धर्मात्मा होने से वह स्वर्ग में जाता है और पापात्मा होने से वह नरक में जाता है।'

इससे यह सिद्ध होता है कि मृत्यु के बाद तत्क्षण कर्मानुसार उसको स्वर्ग या नरक के भोग प्राप्त होने लगते हैं। आतिवाहिक शरीर की पृथक् कल्पना व्यर्थ है, परन्तु पितर लोक की प्राप्ति के पूर्व सभी जन्मान्तर ग्रहण करने वालों को प्रेत योनि में जाना पड़ता है।

३—मद्य-पान करनेवाला, ब्रह्मघाती, सुवर्ण चुरानेवाला तथा जो पुरुष इनका सङ्ग करता है, ये सब "सूकर नरक" में जाते हैं।

४—क्षत्रिय अथवा वैश्य का बध करनेवाला "ताल नरक" में तथा गुरुस्त्री के साथ गमन करनेवाला, भगिनीगामी और राजदूतों को मारनेवाला पुरुष "तप्तकुण्डनरक" में पड़ता है।

५—सती स्त्री को बेचनेवाला, कारागृहरक्षक, अश्वविक्रेता और भक्त पुरुष का त्याग करनेवाला, ये सब "तप्तलोहनरक" में गिरते हैं।

६—पुत्रवधू और पुत्री के साथ विषय करनेवाला पुरुष "महाज्वालनरक" में गिराया जाता है।

७—जो नराधम गुरुजनों का अपमान करनेवाला और उनसे दुर्वचन बोलनेवाला होता है तथा जो वेद की निन्दा करनेवाला वेद बेचनेवाला या अगम्या स्त्री से सम्भोग करता है, वे सब "लवणनरक" में जाते हैं।

८—चोर तथा मर्यादा का उल्लंघन करनेवाला पुरुष "विलोहित-नरक" में गिरता है।

९—देव, द्विज और पितृगण से द्वेष करनेवाला तथा रत्न को दूषित करनेवाला "कृमिभक्षनरक" में और अनिष्ट यज्ञ करनेवाला "कृमीशनरक" में जाता है।

१०—जो नराधम पितृगण, देवगण और अतिथियों को छोड़कर उनसे पहले भोजन कर लेता है, वह अति उग्र "लालाभक्षनरक" में पड़ता है और बाण वनानेवाला "वेधकनरक" में जाता है।

११—जो मनुष्य कर्णी नामक बाण वनाते हैं और जो खड्गादि शस्त्र बनानेवाले हैं, वे अति दारुण "विशसननरक" में गिरते हैं।

१२—असत्-प्रतिग्रह (दूषित उपायों से धन-संग्रह) करनेवाला, अयाज्ययाजक और नक्षत्रोपजीवी (नक्षत्रविद्या को न जानकर भी उसका ढोंग रचनेवाला) पुरुष "अधोमुखनरक" में पड़ता है।

१३—साहस (निष्ठुर कर्म) करनेवाला पुरुष "पूयवहनरक" में

जाता है तथा (पुत्र-मित्रादिकी वञ्चना करके) अकेले ही स्वादु भोजन करनेवाला और लाख, मांस, रस, तिल तथा लवण आदि बेचनेवाला ब्राह्मण भी उसी (पूयवह) नरक में गिरता है।

१४—बिलाव, कुक्कुट, छाग, अश्व, शूकर तथा पक्षियों को (जीविका के लिये) पालने से भी पुरुष उसी नरक में जाता है।

१५—नट या मल्ल—वृत्ति से रहनेवाला, धीवर का कर्म करनेवाला, कुण्ड (उप-पति से उत्पन्न सन्तान) का अन्न खानेवाला, विष देनेवाला, चुगलखोर, स्त्री की असद्‌वृत्ति के आश्रय रहनेवाला, धन आदि के लोभ से बिना पर्व के अमावास्या आदि पर्व-दिनों का कार्य करानेवाला द्विज, घर में आग लगानेवाला, मित्र की हत्या करनेवाला, शकुन आदि बतानेवाला, ग्राम का पुरोहित तथा सोम (मदिरा) बेचनेवाला, ये सब "रुधिरान्धनरक" में गिरते हैं।

१६—यज्ञ अथवा ग्राम को नष्ट करनेवाला पुरुष "वैतरणीनरक" में जाता है तथा जो लोग वीर्यपातादि करनेवाले, खेतों की बाड़ तोड़नेवाले, अपवित्र और छलवृत्ति के आश्रय रहनेवाले होते हैं, वे "कृष्णनरक" में गिरते हैं।

१७—जो वृथा ही वनों को काटता है, वह "असिपत्रबननरक" में जाता है। मेषोपजीवी (गड़रिये) और व्याधगण "वह्निज्वालनरक" में गिरते है तथा जो कच्चे घड़ों अथवा ईंट आदि को पकाने के लिये उनमें अग्नि डालते हैं, वे भी उस (वह्निज्वालनरक) में ही जाते हैं।

१८—व्रतों को लोप करनेवाले तथा अपने आश्रम से पतित दोनों ही प्रकार के पुरुष "सन्दंश नरक" में गिरते हैं।

१९—जिन ब्रह्मचारियों का दिन में तथा सोते समय (बुरी भावना से) वीर्यपात हो जाता है अथवा जो अपने ही पुत्रों से पढ़ते हैं, वे लोग "श्वभोजननरक" में गिरते हैं।

२०—इस प्रकार ये तथा अन्य सैकड़ों, हजारों नरक हैं, जिनमें दुष्कर्मी लोग नाना प्रकार की यातनाएँ भोगा करते हैं।

२१—इन उपर्युक्त पापों के समान और भी सहस्रों पापकर्म हैं, उनके फल मनुष्य भिन्न-भिन्न नरकों में भोगा करते हैं।

२२—जो लोग अपने वर्णाश्रम-धर्म के विरुद्ध मन, वचन अथवा कर्म से कोई आचरण करते हैं, वे नरक में गिरते हैं।

२३—अधोमुखनरक निवासियों को स्वर्ग-लोक में देवगण दिखायी दिया करते हैं और देवता लोग नीचे के लोकों में नारकीय जीवों को देखते हैं।

२४—पापी लोग नरक भोग के अनन्तर क्रम से स्थावर, कृमि, जलचर, पक्षी, पशु, मनुष्य, धार्मिक पुरुष, देवगण तथा मुमुक्षु होकर जन्म ग्रहण करते हैं।

२५—मुमुक्षुपर्यन्त इन सब में दूसरों की अपेक्षा पहले प्राणी [संख्या में] सहस्रगुण अधिक हैं।

२६—जितने जीव स्वर्ग में हैं, उतने ही नरक में हैं, जो पापी पुरुष [अपने पाप का] प्रायश्चित्त नहीं करते, वे ही नरक में जाते हैं।

मार्कण्डेयपुराणमें नारकीय मनुष्योंकी नरक-यातना इस प्रकार लिखी है—

झूठी गवाही देने और झूठ बोलनेवाला मनुष्य "रौरव नरक" में जाता है।

रौरव नरक की लम्बाई-चौड़ाई दो हजार योजन की है। वह एक गढ़े के रूप में है, जिसकी गहराई घुटनों तक की है। वह नरक अत्यन्त दुष्कर है। उसमें भूमि के बराबर तक अङ्गार-राशि बिछी रहती है। उसके भीतर की भूमि दहकते हुए अङ्गारों से बहुत तपी होती है। सारा नरक तीव्र वेग से प्रज्वलित होता रहता है। उसी के भीतर यमराज के दूत पापी मनुष्य को डाल देते हैं। वह धधकती हुई आग में जब जलने लगता है, तो इधर-उधर दौड़ता है, किन्तु पग-पगपर उसका पैर जल-भुनकर राख होता रहता है। वह दिन-रात में कभी एक बार पैर उठाने और रखने में समर्थ होता है। इस प्रकार सहस्रों

योजन पार करने पर वह उससे छुटकारा पाता है। फिर दूसरे पापों की शुद्धि के लिये उसे वैसे ही अन्य नरकों में जाना पड़ता है। इस प्रकार सब नरकों में यातना भोगकर निकलने के बाद पापी जीव तिर्यग्योनि में जन्म लेता है। क्रमशः कीड़े-मकोड़े, पतङ्ग, हिंसक जीव, मच्छर, हाथी, वृक्ष आदि, गौ, अश्व तथा अन्यान्य दुःखदायिनी पापयोनियों में जन्म धारण करने के पश्चात् वह मनुष्य-योनि में आता है। उसमें भी वह कुरूप, कुबड़ा, नाटा और चण्डाल आदि होता है। फिर अवशिष्ट पाप और पुण्य से मुक्त हो, वह क्रमशः ऊँचे चढ़ने वाली योनियों में जन्म लेकर वह शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण, देवता तथा इन्द्र आदि के के रूप में उत्पन्न होता है। इस प्रकार पाप करनेवाले जीव नरकों में नीचे गिरते हैं।

अब पुण्यात्मा जीव जिस प्रकार यात्रा करते हैं, उसको पढ़िये; वे पुण्यात्मा मनुष्य धर्मराज की बतायी हुई पुण्यमयी गति को प्राप्त होते हैं। उनके साथ गन्धर्व गीत गाते चलते हैं, अप्सराएँ नृत्य करती रहती हैं तथा वे भाँति-भाँति के दिव्य आभूषणों से सुशोभित हो सुन्दर विमानों पर बैठकर यात्रा करते हैं। वहाँ से पृथ्वी पर आनें पर वे राजाओं तथा अन्य महात्माओं के कुल में जन्म लेते और सदाचार का पालन करते हैं। वहाँ उन्हें श्रेष्ठ भोग प्राप्त होते हैं। तदनन्तर शरीर त्यागने के बाद वे पुनः स्वर्ग आदि ऊपर के लोकों में जाते हैं। ऊपर के लोकों में होनेवाली गति को "आरोहणी" कहते हैं। फिर वहाँ से पुण्यभोग के पश्चात् जो मृत्युलोक में उतरना होता है, वह "अवरोहणी" गति है। इस अवरोहणी गति को प्राप्त होनें पर मनुष्य फिर पहले की ही भाँति आरोहणी गति को प्राप्त होते हैं।

अब महारौरव नरक का वर्णन देखिये—इसका विस्तार सब ओर से बारह हजार योजन है। वहाँ की भूमि ताँबे की है, जिसके नीचे आग धधकती रहती है। उसकी आँच से तपकर वह सारी ताम्रमयी भूमि चमकती हुई बिजली के समान ज्योतिर्मयी दिखायी देती है।

उसकी ओर देखना और स्पर्श आदि करना अत्यन्त भयङ्कर है। यमराज के दूत हाथ और पैर बाँधकर पापी जीव को उसके भीतर डाल देते हैं और वह लौटता हुआ आगे बढ़ता है। मार्ग में कौवे, बगुले, बिच्छू, मच्छर और गिद्ध उसे जल्दी-जल्दी नोच खाते हैं। उसमें जलते समय वह व्याकुल हो-होकर छटपटाता है और बारंबार "अरे बाप! अरे मैया! हाय भैया! हा तात! आदि की रट लगाता हुआ करुण क्रन्दन करता है, किन्तु उसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती। इस प्रकार उसमें पड़े हुए जीव जिन्होंने दूषित बुद्धि के कारण पाप किये हैं, दस करोड़ वर्ष बीतने पर उससे छुटकारा पाते हैं। इसके सिवा 'तम' नामक एक दूसरा नरक है, जहाँ स्वभाव से ही कड़ाके की सर्दी पड़ती है। उसका विस्तार भी महारौरव के ही बराबर है, किन्तु वह घोर अन्धकार से आच्छादित रहता है। वहाँ पापी मनुष्य सर्दी से कष्ट पाकर भयानक अन्धकार में दौड़ते हैं और एक दूसरे से भिड़कर लिपटे रहते हैं। जाड़े के कष्ट से काँप कर कटकटाते हुए उनके दाँत टूट जाते हैं। भूख-प्यास भी वहाँ बड़े जोर की लगती है। इसी प्रकार अन्यान्य उपद्रव भी होते रहते हैं। ओलों के साथ बहने वाली भयङ्कर वायु शरीर में लगकर हड्डियों को चूर्ण किये देती हैं और उनसे जो मज्जा तथा रक्त गिरता है, उसी को वे क्षुधातुर प्राणी खाते हैं। एक दूसरे के शरीर से सटकर वे परस्पर चाटा करते हैं। इस प्रकार जबतक पापों का भोग समाप्त नहीं हो जाता, तबतक वहाँ भी मनुष्यों को अन्धकार में महान् कष्ट भोगना पड़ता है। इससे भिन्न एक 'निकृन्तन' नामक नरक है, जो सब नरकों में प्रधान है। उसमें कुम्हार की चाक के समान बहुत से चक्र निरन्तर घूमते रहते हैं। यमराज के दूत पापी जीवों को उन चक्रों पर चढ़ा देते और अपनी अँगुलियों में कालसूत्र लेकर उसी के द्वारा उनके पैर से लेकर मस्तक तक प्रत्येक अङ्ग काटा करते हैं। फिर भी उन पापियों के प्राण नहीं निकलते। उनके शरीर के सैकड़ों टुकड़े हो जाते

हैं, किन्तु फिर वे जुड़कर एक हो जाते हैं। इस प्रकार पापी जीव हजारों वर्षों तक वहाँ काटे जाते हैं। यह यातना उन्हें तबतक दी जाती है, जबतक कि उनके सारे पापों का नाश नहीं हो जाता। अब 'अप्रतिष्ठ' नामक नरक का वर्णन पढ़िये—जिसमें पड़े हुए जीवों को असह्य दुःख का अनुभव करना पड़ता है। वहाँ भी वे ही कुलाल-चक्र होते हैं, साथ ही दूसरी ओर घटीयन्त्र भी बने होते हैं, जो पापी मनुष्यों को दुःख पहुंचाने के लिये बनाये गये हैं। वहाँ कुछ मनुष्य उन चक्रों पर चढ़ाकर घुमाये जाते हैं। हजारों वर्षों तक उन्हें बीच में विश्राम नहीं मिलता। इसी प्रकार दूसरे पापी घटीयन्त्रों में बाँध दिये जाते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे रहट में छोटे-छोटे घड़े बँधे होते हैं। वहाँ बँधे हुए मनुष्य उन यन्त्रों के साथ में जब घूमने लगते हैं, तो बारम्बार रक्त वमन करते हैं। उनके मुख से लार गिरती है और नेत्रों से अश्रु झरते रहते हैं। उस समय उन्हें इतना दुःख होता है, जो जीवमात्र के लिये असह्य है।

असिपत्रबन नामक अन्य नरक का वर्णन देखिये—

जहाँ एक हजार योजन तक की भूमि प्रज्वलित अग्नि से आच्छादित रहती है तथा ऊपर से सूर्य की अत्यन्त भयङ्कर एवं प्रचण्ड किरणें ताप देती हैं, जिनसे उस नरक में निवास करनेवाले जीव सदा सन्तप्त होते रहते हैं। उसके बीच में एक बहुत ही सुन्दर बन है, जिसके पत्ते चिकने जान पड़ते हैं, किन्तु वे सभी पत्ते तलवार की तीखी धार के समान हैं। उस बन में बडे बलवान् कुत्ते भूंकते रहते हैं, जो दस हजार की संख्या में सुशोभित होते हैं। उनके मुख और दाढ़ें बड़ी-बड़ी होती हैं। वे व्याघ्रों के समान भयानक प्रतीत होते हैं। वहाँ की भूमि पर जो आग बिछी होती है, उससे जब दोनों पैर जलने लगते हैं, तब वहाँ गये हुए पापी जीव "हाय माता! हाय पिता!" आदि कहते हुए अत्यन्त दुःखित होकर कराहने लगते हैं। उस समय तीव्र पिपासा के कारण उन्हें बड़ी पीड़ा होती है,

फिर अपने सामने शीतल छाया से युक्त 'असिपत्र बन' को देखकर वे प्राणी विश्राम की इच्छा से वहाँ जाते हैं। उनके वहाँ पहुंचने पर बड़े जोर की हवा चलती है, जिससे उनके ऊपर तलवार के समान तीखे पत्ते गिरने लगते हैं। उनसे आहत होकर वे पृथ्वी पर जलते हुए अंगारों के ढेर में गिर पड़ते हैं। वह आग अपनी लपटों से सर्वत्र व्याप्त हो सम्पूर्ण भूतल को चाटती हुई सी जान पड़ती है। इसी समय अत्यन्त भयानक कुत्ते वहाँ शीघ्र ही दौड़ते हुए आते हैं और रोते हुए पापियों के सब अङ्गों को टुकड़े-टुकडे कर डालते हैं।

इससे भी अत्यन्त भयङ्कर 'तप्तकुम्भ' नामक नरक का वर्णन देखिये—

वहाँ चारों ओर आग की लपटों से घिरे हुए बहुत से लोहे के घड़े मौजूद हैं, जो खूब तपे होते हैं। उनमें से किन्हीं में तो प्रज्वलित अग्नि की आँच से खौलता हुआ तेल भरा रहता है और किन्ही में तपाये हुए लोहे का चूर्ण होता है। यमराज के दूत पापी मनुष्यों को उनका मुँह नीचे करके उन्हीं घड़ों में डाल देते हैं। वहाँ पड़ते ही उनके शरीर टूट-फूट जाते हैं। शरीर की मज्जा का भाग गलकर पानी हो जाता है। कपाल और नेत्रों की हड्डियाँ चटककर फूटने लगती हैं। भयानक गृध्र उनके टुकड़ों को उन्हीं घड़ों में डाल देते हैं। वहाँ वे सभी टुकड़े सीझकर तेल में मिल जाते हैं। मस्तक, शरीर, स्नायु, मांस, त्वचा और हड्डियाँ—सभी गल जाती हैं। तदनन्तर यमराज के दूत करछुल से उलट-पुलटकर खौलते हुए तेल में उन पापियों को अच्छी तरह मथते हैं।

नरकों में पड़े हुए जीव अपने घोर महापाप का फल भोगते हैं, इसी प्रकार ये स्वर्गलोक में देवताओं के साथ रहकर गन्धर्व, सिद्ध और अप्सराओं के सङ्गीत आदि का सुख उठाते हुए पुण्यों का उपभोग करते हैं। देवता, मनुष्य और पशु-पक्षियों की योनि में जन्म लेकर जीव अपने पुण्य-पापजनित सुख-दु:खरूप शुभाशुभ फलों को भोगता है।

जो नीच मनुष्य कामना और लोभ के वशीभूत हो दूषित दृष्टि एवं कलुषित चित्त से परायी स्त्री और पराये धन पर आँखे गड़ाते हैं, उनकी दोनों आँखों को ये वज्रतुल्य चोंचवाले पक्षी निकाल लेते हैं और पुनः-पुन: इनके नवीन नेत्र उत्पन्न हो जाते हैं। इन पापी मनुष्यों ने जितने निमेषतक पापपूर्ण दृष्टिपात किया है, उतने ही हजार वर्षों तक ये नेत्र की पीड़ा भोगते हैं। जिन लोगों ने असत् शास्त्र का उपदेश किया है तथा किसी को बुरी सलाह दी है, जिन्होंने शास्त्र का उलटा अर्थ लगाया है, मुँह से झूठी बातें निकाली हैं तथा वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरु की निन्दा की है, उन्हीं की जिह्वा को ये वज्रतुल्य चोंचवाले भयङ्कर पक्षी उखाड़ते हैं और वह जिह्वा नयी-नयी उत्पन्न होती रहती है। जितने निमेषतक उनके द्वारा जिह्वाजनित पाप हुआ होता है, उतने वर्षों तक उन्हें यह कष्ट भोगना पड़ता है। जो नराधम दो मित्रों में फूट डालते हैं, पिता-पुत्र में, स्वजनों में, यजमान और पुरोहित में, माता और पुत्र में, सङ्गी-साथियों में तथा पति और पत्नी में वैर डालते है, वे ही ये आरे से चीरे जाते हैं।

जो दूसरों को ताप देते, उनकी प्रसन्नता में बाधा पहुँचाते, पंखे, हवादार स्थान, चन्दन और खसकी टट्टी आदि का अपहरण करते हैं तथा निर्दोष व्यक्तियों को भी प्राणान्तक कष्ट पहुँचाते हैं, वे ही ये अधम पापी हैं जो तपायी हुई बाल में पड़कर कष्ट भोगते हैं। जो ब्राह्मण किसी देवकार्य या पितृकार्य में दूसरे के द्वारा निमन्त्रित होकर भी दूसरे किसी के यहाँ श्राद्ध-भोजन कर लेता है, उसके यहाँ आने पर ये पक्षी दो टुकड़े कर डालते हैं। जो अपनी अनुचित बातों से साधु पुरुषों के मर्म पर आघात पहुँचाता है, उसको ये पक्षी अत्यन्त पीड़ा देते हैं। इन्हें ऐसा करने से कोई रोक नहीं सकता। जो झूठी बातें कहकर और विपरीत धारणा बनाकर किसी की चुगली खाते हैं, उनकी जिह्वा को तेज किये हुये छूरों से दो टुकड़े कर दिये जाते हैं।

जिन्होंने उद्दण्डतावश माता, पिता तथा गुरुजनों का अनादर किया है, वे ही ये पीब, विष्ठा और मूत्र से भरे हुये गढ़ों में नीचे मुख करके डुबाये जाते हैं। जो देवता, अतिथि, अन्यान्य प्राणी, भृत्यवर्ग, अभ्यागत, पित्तर, अग्नि तथा पक्षियों को अन्न का भाग दिये बिना ही स्वयं भोजन कर लेते हैं, वे हो पीब और गोंद चाटकर रहते हैं। उनका शरीर तो पहाड़ के समान विशाल होता है, किन्तु मुख सूई की नोक के बराबर रहता है।

जो लोग ब्राह्मण अथवा किसी अन्य वर्ग के मनुष्य को एक पंक्ति में बिठाकर भोजन में भेद करते हैं, उन्हें विष्ठा खाकर रहना पड़ता है। जो लोग एक समुदाय में साथ-साथ आये हुए अर्थार्थी मनुष्य को निर्धन जानकर छोड़ देते और अकेले अपना अन्न भोजन करते हैं, वे ही थूक और खँखार भोजन करते हैं।

जिन लोगों ने जूठे हाथों से गौ, ब्राह्मण और अग्नियों का स्पर्श किया है, उनको यमराज के दूत जलते हुए लोह के खंभों पर हाथ रखवा कर चटाते हैं।

जिन्होंने स्वेच्छापूर्वक जूठे मुँह होकर भी सूर्य-चन्द्रमा और तारों पर दृष्टिपात किया है, उनकी आँखों में आग रखकर यमराज के दूत उसे धौंकते हैं।

जो पुरुष गौ, अग्नि, माता, ब्राह्मण, ज्येष्ठ भ्राता, पिता, बहिन, कुटुम्ब की स्त्री, गुरु तथा बडे-वृद्धों को पैरों से स्पर्श करते हैं, उनके दोनों पैरों को अग्नि में तपायी हुई लोहे की बेड़ियों से जकड़ दिये जाते हैं और उन्हें अंगारों के ढेर में खड़ा कर दिया जाता है। उसमें उनके पैर से लेकर घुटने तक का भाग जलता रहता है।

जो नराधम अपने कानों से गुरु, देवता, द्विज और वेदों की निन्दा सुनते हैं और उसे सुनकर प्रसन्न होते हैं, उन पापियों के कानों में यमराज के दूत आग में तपायी हुई लोहे की कीलें ठोंक देते हैं। विलाप करने पर भी उन्हें छुटकारा नहीं मिलता।

जो लोग क्रोध और लोभ के वश में होकर पौंसले, देवमन्दिर, ब्राह्मण के घर तथा देवालय के सभा-भवन तुड़वाकर नष्ट करा देते हैं, उनको अत्यन्त कठोर स्वभाववाले यमदूत तीखे शस्त्रों से शरीर की खाल उधेड़ लेते हैं। उनके चिल्लाने पर भी दया नहीं करते।

जो मनुष्य गौ, ब्राह्मण तथा सूर्य की ओर मुँह करके मल-मूल का त्याग करते हैं. उनकी आँतों को कौए गुदा मार्ग से खीचते हैं।

जो किसी एक को कन्या देकर फिर दूसरे के साथ उसका विवाह कर देता है, उसके शरीर में बहुत-से घाव करके उसे खारे पानी की नदी में बहा दिया जाता है।

जो मनुष्य दुर्भिक्ष अथवा सङ्कटकाल में अपने पुत्र, भृत्य, पत्नी आदि तथा बन्धुवर्ग को अकिञ्चन जानकर भी त्याग देता और केवल अपना पेट पालने में लगा रहता है, वह भी जब इस लोक में आता है तो यमराज के दूत भूख लगने पर उसके मुख में उसके ही शरीर का मांस नोचकर डाल देते हैं और वही उसे खाना पड़ता है।

जो पुरुष अपनी शरण में आये हुए तथा अपनी ही दी हुई वृत्ति से जीविका चलानेवाले मनुष्यों को लोभवश त्याग देता है, वह भी यमदूतों द्वारा कोल्हू में पेरे जाने के कारण यन्त्रणा भोगते हैं।

जो मनुष्य अपने जीवन भर के किये हुए पुण्य को धन के लोभ से बेच डालते हैं, वे पापियों की तरह चक्कियों में पीसे जाते हैं। किसी की धरोहर हड़प लेनेवाले लोगों के सब अङ्ग रस्सियों से बाँध दिये जाते हैं और उन्हें दिन-रात क़ीड़े, बिच्छू तथा सर्प काटते, खाते रहते हैं।

जो पापी मनुष्य दिन में मैथुन करते और परायी स्त्री को भोगते हैं, वे भूख से दुर्बल रहते हैं, प्यास की पीड़ा से उनकी जीभ और तालू गिर जाते हैं और वे वेदना से व्याकुल रहते हैं और जो मनुष्य परायी स्त्रियों का सतीत्व नष्ट करनेवाले हैं, उनको यमराज के दूत घरिया में रखकर गलाते हैं।

जो उद्दण्ड मनुष्य गुरु को नीचे बिठाकर और स्वयं ऊँचे आसन पर बैठकर अध्ययन करता अथवा शिल्पकला की शिक्षा ग्रहण करता है, वह मस्तक पर शिला का भारी भार ढोता हुआ क्लेश पाता है। यमलोक के मार्ग में वह अत्यन्त पीड़ित एवं भूख से दुर्बल रहता है और उसका मस्तक दिन-रात बोझ ढोने की पीड़ा से व्यथित होता रहता है।

जो पुरुष जल में मूत्र, थूक और विष्ठा का त्याग करते हैं, वे ही लोग थूक, विष्ठा और मूत्र से भरे हुए दुर्गन्धयुक्त नरक में जाते हैं।

जिन लोगों ने अग्निहोत्री होकर भी वेदों और वैदिक अग्नियों का परित्याग किया है, वे पर्वतों की चोटी से बारंबार नीचे गिराये जाते हैं।

जो लोग दूसरी बार व्याही जानेवाली स्त्री के पति होकर जीवन व्यतीत करते हैं, वे उस लोक में कीड़े होते हैं जिनको चीटियाँ खाती हैं। पतितों का दिया हुआ दान लेने, उनका यज्ञ कराने तथा प्रतिदिन उनकी सेवामें रहने से मनुष्य पत्थर के भीतर कीड़ा होकर सदा निवास करता है। जो कुटुम्ब के लोगों, मित्रों तथा अतिथि के देखते-देखते अकेले ही मिठाई उड़ाते हैं, उन्हें जलते हुए अँगारे चबाने पड़ते हैं।

जो ब्राह्मण एक दूसरे से मिलकर सदा श्राद्धान्न भोजन करने में ही आसक्त रहते हैं, उन्हें दुष्ट सर्पों के सर्वाङ्ग से निकला हुआ फेन पीना पड़ता है।

जो सुवर्ण की चोरी करनेवाले, ब्रह्महत्यारे, शराबी तथा गुरुपत्नी-गामी—ये चारों प्रकार के महापापी पुरुषों को नीचे और ऊपर धधकती हुई आग के बीच में झोंककर सब ओर से जलाये जाते हैं। इस अवस्था में उन्हें कई हजार वर्षों तक रहना पड़ता है। तदनन्तर वे मनुष्य योनि में उत्पन्न होते तथा कोढ़ एवं यक्ष्मा आदि रोगों से युक्त रहते हैं। वे मरने के बाद फिर नरक में जाते हैं और पुनः उसी प्रकार नरक से लौटने पर रोगयुक्त जन्म धारण करते हैं। इस प्रकार कल्प के अन्त तक उनके आवागमन का यह चक्र चलता रहता है।

जो मनुष्य गौ की हत्या करता है, वह तीन जन्मों तक नीच से नीच नरकों में पड़ता है। अन्य सभी उपपातकों का फल भी ऐसा ही निश्चय किया गया है।

रौरव, शौकर, रोध, तान, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, महालोभ, विमोहन, रुधिरान्ध, वसातप्त, कृमीश, कृमिभोजन, असिपत्रवन, लालाभक्ष्य, पूयवह, वह्निज्वाल, अधःशिरा, संदन्श, कृष्णसूत्र, तम, अबीचि, श्वभोजन, अप्रतिष्ठ तथा अवीचि इत्यादि बहुत से नरक हैं, जो अत्यन्त भयंकर हैं। ये सब यम के राज्य में हैं। शस्त्र, अग्नि और विषके द्वारा यातना देने के कारण वे सभी नरक अत्यन्त भयंकर है। जो मनुष्य पाप कर्मों में लगे रहते हैं, वे ही उन नरकों में गिरते हैं।

जो झूठी गवाही देता पक्षपातपूर्वक बोलता तथा असत्य भाषण करता है, वह मनुष्य "रौरव" नरक में पड़ता है।

जो गर्भ के बच्चे की हत्या कराता, गुरु के प्राण लेता, गाय को मारता तथा दूसरों के श्वास रोककर मार डालता है, वे सभी "घोर रौरव" नरक में गिरते हैं।

जो शराबी, ब्रह्महत्यारा, सुवर्ण की चोरी करनेवाला तथा इन पापियों से संसर्ग रखनेवाला है, वह "शौकर" नरक में जाता है।

जो क्षत्रिय और वैश्य की हत्या करता, गुरुपत्नी से संसर्ग रखता, बहिन के साथ व्यभिचार करता तथा राजदूत के प्राण लेता है, वह "तप्तकुम्भ" नामक नरक में पड़ता है।

जो शराब तथा सिंह को बेचता और अपने भक्त का त्याग करता है, वह "तप्तलोह" नामक नरक में गिरता है।

जो पुत्री और पुत्रबधू के साथ समागम करनेवाला है, वह "महाज्वाल" नामक नरक में गिराया जाता है।

जो अपने गुरुजनों का अपमान करता, उन्हें गालियाँ देता, वेदों

को दूषित करता, उन्हें बेचता तथा अगम्या स्त्रियों के साथ समागम करता है, वे सभी "शबल" नामक नरक में जाते हैं।

जो चोर तथा मर्यादा में कलङ्क लगानेवाला है, वह "विमोह" नामक नरक में गिरता है।

जो देवताओं, द्विजों तथा पितरों से द्वेष रखनेवाला एवं रत्न को दूषित करनेवाला है, वह "कृमिभक्ष्य" नामक नरक में पड़ता है।

जो पुरुष दूषित यज्ञ करता और देवताओं, पितरों एवं अतिथियों को दिये बिना ही स्वयं खा लेता है, वह "लालाभक्ष्य" नामक भयंकर नरक में जाता है।

जो बाण बनानेवाला है, वह "वेधक" नामक नरक में गिरता है।

जो कर्णी नामक बाण तथा खड्ग आदि आयुधों का निर्माण करता है, वह अत्यन्त भयंकर "विशसन" नामक नरक में गिराया जाता है।

जो द्विज नीच प्रतिग्रह स्वीकार करता है, यज्ञ के अनधिकारियों से यज्ञ करवाता है तथा केवल नक्षत्र बताकर जीविका चलाता है, वह "अधोमुख" नामक नरक में जाता है।

जो अकेला ही मिठाई खाता है, वह मनुष्य "कृमिपूय" नामक नरक में जाता है।

लाख, मांस, रस, तिल और नमक बेचनेवाला ब्राह्मण भी उसी "कृमिपूय" नामक नरक में जाता है।

बिल्ली, मुर्गी, बकरा, कुत्ता, सूअर तथा चिड़िया पालनेवाला ब्राह्मण भी उसी "कृमिपूय" नामक नरक में गिरता है।

जो ब्राह्मण रङ्गमंचपर नाचकर जीविका चलाता, जारज मनुष्य का अन्न खाता, दूसरों को जहर देता, चुगली करता, भैंस से जीविका चलाता, पर्व के दिन स्त्रीसम्भोग करता, शकुन बताकर पैसे लेता,

गाँवभर की पुरोहिती करता, तथा सोम-रस बेचता है, वह "रुधिरान्ध" नामक नरक में गिरता है।

भाई को मारनेवाला और सम्पूर्ण गाँव को नष्ट करनेवाला मनुष्य "वैतरणी" नदी में जाता है।

जो मनुष्य वीर्यपान करते, मर्यादा तोड़ते, अपवित्र रहते और बाजीगरी से जीविका चलाते हैं, वे "कृच्छ्र" नामक नरक में गिरते हैं।

जो अकारण जङ्गल कटवाता है, वह "असिपत्रबन" नामक नरक में जाता है।

भेड़ के व्यापार से जीविका चलानेवाले और मृगों का बध करनेवाले मनुष्य "बह्निज्वाल" नामक नरक में गिराये जाते हैं।

जो व्रत का लोप करनेवाले तथा अपने आश्रम से भ्रष्ट हैं, वे दोनों ही "संदन्श" नामक नरक की यातना में पड़ते हैं।

जो मनुष्य ब्रह्मचारी होकर दिन में सोते और स्वप्न में वीर्यपात करते हैं, तथा जो लोग अपने पुत्रों द्वारा पढ़ाये जाते हैं, वे "श्वभोजन" नामक नरक में गिरते हैं।

अग्निपुराण (३७१।१३-३७) में नरक-यातनाका उल्लेख इस प्रकार है—

इस पृथ्वी के नीचे नरक की अट्ठाईस ही श्रेणियाँ हैं। सातवें तल के अन्त में घोर अन्धकार के भीतर उनकी स्थिति है। नरक की पहली कोटि "घोरा" के नाम से प्रसिद्ध है। उसके नीचे "सुघोरा" की स्थिति है। तीसरी "अतिघोरा", चौथी "महाघोरा" और पाँचवीं "घोररूपा" नाम की कोटि हैं। छठी का नाम "तरलतारा" और सातवीं का "भयानका" है। आठवीं "भयोत्कटा", नवीं "कालरात्रि", दसवीं "महाचण्डा", ग्यारहवीं "चण्डा", बारहवीं "कोलाहला", तेरहवीं "प्रचण्डा", चौदहवीं "पद्मा" और पंद्रहवीं

"नरकनायिका" है। सोलहवीं "पद्मावती", सत्रहवीं "भीषणा", अठारहवीं "भीमा", उन्नीसवीं "करालिका", बीसवीं "विकराला", इक्कीसवीं "महावज्रा", बाईसवीं "त्रिकोणा" और तेईसवीं "पञ्च-कोषिका" है। चौबीसवीं "सुदीर्घा", पचीसवीं "वर्तुला", छब्बीसवीं "सप्तभूमा", सत्ताईसवीं "सुभूमिका" और अट्ठाईसवीं "दीप्तमाया" है। इस प्रकार ये अट्ठाईस कोटियाँ पापियों को दुःख देनेवाली हैं।

नरकों की अट्ठाईस कोटियों के पाँच-पाँच नायक हैं [तथा पाँच उनके भी नायक हैं]। वे "रौरव" आदि के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन सबकी संख्या एक सौ पैंतालीस है—तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, असिपत्रवन, लोहभार, कालसूत्रनरक, महानरक, संजीवन, महावीचि, तपन, सम्प्रतापन, संघात, काकोल, कुड्मल, पूतमृत्युक, लोहशङ्कु, ऋजीष, प्रधान. शाल्मली वृक्ष और वैतरणी नदी आदि सभी नरकों को "कोटि-नायक" समझना चाहिये। वे बड़े भयंकर दिखायी देते हैं। पापी पुरुष इनमें से एक-एक में तथा अनेक में भी डाले जाते हैं। यातना देनेवाले यमदूतों में किसी का मुख बिलाव के समान होता है तो किसी का उल्लू के समान, कोई गीदड़ के समान मुखवाले हैं तो कोई गृध्र आदि के समान। वे मनुष्य को तेल के कड़ाहे में डालकर उसके नीचे आग जला देते हैं। किन्हीं को भाड़ में, किन्हीं को ताँबे या तपाये हुए लोहे के वर्तनों में तथा बहुतों को आग की चिनगारियों में डाल देते हैं। कितनों को वे शूली पर चढ़ा देते हैं। बहुत से पापियों को नरक में डालकर उनके टुकड़े-टुकड़े किये जाते हैं। कितने ही कोड़ों से पीटे जाते हैं और कितनों को तपाये हुये लोहे के गोले खिलाये जाते हैं। बहुत से यमदूत उनको धूलि, विष्ठा, रक्त और कफ आदि भोजन कराते तथा तपायी हुई मदिरा पिलाते हैं। बहुत से जीवों को वे आरे से चीर डालते हैं। कुछ लोगों को कोल्हू में पेरते हैं। कितनों को कौवे आदि नोच-नोचकर खाते हैं। किन्हीं-किन्हीं के ऊपर गरम

तेल छिड़का जाता है तथा कितने ही जीवों के मस्तक के अनेकों टुकड़े किये जाते हैं। उस समय पापी जीव 'अरे बाप रे' कहकर चिल्लाते हैं और हाहाकार मचाते हुए अपने पाप कर्मों की निन्दा करते हैं। इस प्रकार बड़े-बड़े पातकों के फलस्वरूप भयंकर एवं निन्दित नरकों का कष्ट भोगकर कर्म क्षीण होने के पश्चात् वे महापापी जीव पुनः इस मर्त्यलोक में जन्म लेते हैं।

ब्रह्महत्यारा पुरुष मृग, कुत्ते, सूअर और ऊँटों की योनि में जाता है। मदिरा पीनेवाला गदहे, चाण्डाल तथा म्लेच्छों में जन्म पाता है। सोना चुरानेवाले कीड़े-मकोड़े और पतिङ्गे होते हैं तथा गुरु-पत्नी से गमन करनेवाला मनुष्य तृण एवं लताओं में जन्म ग्रहण करता है। ब्रह्महत्यारा राजयक्ष्मा का रोगी होता है, शराबी के दाँत काले हो जाते हैं, सोना चुरानेवाले का नख खराब होता है तथा गुरुपत्नी-गामी के चमड़े दूषित होते हैं [अर्थात् वह कोढ़ी हो जाता है]। जो जिस पाप से सम्पर्क रखता है, वह उसी का कोई चिह्न लेकर जन्म ग्रहण करता है। अन्न चुरानेवाला मायावी होता है। वाणी (कविता आदि) की चोरी करनेवाला गूँगा होता है। धान्य का अपहरण करनेवाला जब जन्म ग्रहण करता है, तब उसका कोई अङ्ग अधिक होता है, चुगुलखोर की नासिका से बदबू आती है, तेल चुरानेवाला पुरुष और तेल पीनेवाला कीड़ा होता है तथा जो इधर की बातें उधर लगाया करता है, उसके मुँह से दुर्गन्ध आती है। दूसरों की स्त्री तथा ब्राह्मण के धन का अपहरण करने-वाला पुरुष निर्जन वन में ब्रह्मराक्षस होता है। रत्न चुरानेवाला नीच जाति में जन्म लेता है। उत्तम गन्ध की चोरी करनेवाला छछूँदर होता है। शाक-पात चुरानेवाला मुर्गा तथा अनाज की चोरी करने-वाला चूहा होता है। पशु का अपहरण करनेवाला बकरा, दूध चुरानेवाला कौवा, सवारी की चोरी करनेवाला ऊँट तथा फल चुराकर खानेवाला बन्दर होता है। शहद की चोरी करनेवाला

डाँस, फल चुरानेवाला गृध्र तथा घर का समान चुरानेवाला गृहकाक होता है। वस्त्र हड़पनेवाला कोढ़ी, चोरी-चोरी रस का स्वाद लेनेवाला कुत्ता और नमक चुरानेवाला झींगुर होता है।

नारदपुराण (पूर्वभाग–प्रथम पाद) में नारकीय मनुष्यों की यातनाओंका वर्णन यों लिखा है—

ब्रह्महत्यारा, शराबी, सुवर्ण की चोरी करनेवाला, गुरुपत्नी-गामी—ये महापातकी हैं। इनसे संसर्ग रखनेवाला पाँचवाँ महा-पातकी है।

जो पङ्क्तिभेद करता, बलिवैश्वदेवहीन होने के कारण व्यर्थ (केवल शरीर पोषण के लिए ही) पाक बनाता, सदा ब्राह्मणों को लाञ्छित करता, ब्राह्मणों या गुरुजनों पर हुक्म चलाता और वेद बेचता है, ये पाँच प्रकार के पापी 'ब्रह्मघातक' कहे गये हैं।

मैं आपको धन आदि दूँगा, यह आज्ञा देकर जो ब्राह्मण को बुलाता है और पीछे 'नहीं है' ऐसा कहकर उसे सूखा जबाव दे देता है, उसे 'ब्रह्म-हत्यारा' कहा गया है।

जो स्नान अथवा पूजन के लिये जाते हुए ब्राह्मण के कार्य में विघ्न डालता है, उसे भी 'ब्रह्मघाती' कहते हैं।

जो परायी निन्दा और अपनी प्रशंसा में लगा रहता है तथा जो असत्य भाषण में रत रहता है, वह 'ब्रह्महत्यारा' कहा गया है।

अधर्म का अनुमोदन करनेवाले को भी 'ब्रह्मघाती' कहते हैं।

जो दूसरों को उद्वेग में डालता, दूसरों के दोषों की चुगली करता और पाखण्डपूर्ण आचार में तत्पर रहता है, उसे 'ब्रह्महत्यारा' बताया गया हैं।

जो प्रतिदिन दान लेता, प्राणियों के वध में तत्पर रहता तथा अधर्म का अनुमोदन करता है, उसे भी 'ब्रह्मघाती' कहा गया है। इस तरह नाना प्रकार के पाप ब्रह्महत्या के तुल्य बताये गये हैं।

गणान्न-भोजन (कई जगह से भोजन लेकर खाना) करना, वेश्या-सेवन करना और पतित पुरुषों का अन्न भोजन करना सुरापान के तुल्य माना गया है। उपासना का त्याग, देवल-पुरुष (मन्दिर के पुजारी) का अन्न खाना तथा शराब पोनेवाली स्त्री से सम्बन्ध रखना मदिरापान के समान माना गया है।

जो द्विज शूद्र के यहाँ भोजन करता है, उसे सब धर्मों से बहिष्कृत शराबी ही समझना चाहिए।

जो शूद्र के आज्ञानुसार दास का कर्म करता है, वह नराधम ब्राह्मण मदिरापान के समान पाप का भागी होता है। इस तरह अनेक प्रकार के पाप मदिरापान के तुल्य माने गये हैं।

कंद, मूल, फल, कस्तूरी, रेशमी वस्त्र तथा रत्नों की चोरी को सदा सुवर्ण की चोरी के ही समान माना गया है। ताँबा, लोहा, राँगा, काँसा, घी, शहद और सुगन्धित द्रव्यों का अपहरण करना सुवर्ण की चोरी के समान माना गया है। सुपारी, जल, चन्दन तथा कपूर का अपहरण भी सुवर्ण की चोरी के समान है। श्राद्ध का त्याग, धर्म कार्य का लोप करना और यति पुरुषों की निन्दा करना भी सुवर्ण की चोरी के समान माना गया है। भोजन के योग्य पदार्थों का अपहरण, विविध प्रकार के अनाजों की चोरी तथा रुद्राक्ष का अपहरण भी सुवर्ण की चोरी के समान माना गया है।

भगिनी, पुत्र-बधू तथा रजस्वला स्त्री के साथ संगम करना गुरु-पत्नीगमन के समान माना गया है। नीच जाति की स्त्री से सम्बन्ध रखना, मदिरा पीनेवाली स्त्री से सहवास करना तथा परायी स्त्री के साथ सम्भोग करना गुरुतल्पगमन के समान माना गया है। भाई की स्त्री के साथ गमन, मित्र की स्त्री का सेवन तथा अपने पर विश्वास करनेवाली स्त्री के सतीत्व का अपहरण भी गुरुतल्पगमन के समान माना गया है। असमय में मैथुन कर्म करना, पुत्रीगमन करना तथा धर्म का लोप और शास्त्र की निन्दा करना—यह सब गुरुपत्नी-

बार कुत्तों की योनि में जन्म लेकर अन्त में चाण्डालों के घर उत्पन्न होते हैं। इसके बाद वे विष्ठा के कीड़े होते हैं। फिर तीन जन्मों तक व्याघ्र होकर अन्त में इक्कीस युगों तक नरक में पड़े रहते हैं।

जो परायी निन्दा में तत्पर, कटुभाषी और दान में विघ्न डालनेवाले होते हैं, वे मुसल और ओखली के द्वारा चूर्ण किये जाते हैं। उसके बाद उन्हें तीन वर्षों तक तपाया हुआ पत्थर उठाना पड़ता है, तदनन्तर वे सात वर्षों तक कालसूत्र से विदीर्ण किये जाते हैं। उस समय पराये धन का अपहरण करनेवाले वे चोर अपने पापकर्म के लिए शोक करते हुए कर्म के फल से निरन्तर नरकाग्नि में पकाये जाते हैं।

जो दूसरों के दोष बताते या चुगली करते हैं; उन्हें भयंकर नरक की प्राप्ति होती है, उन्हें एक सहस्र युग तक तपाये हुए लोहे का पिण्ड-भक्षण करना पड़ता है। अत्यन्त भयानक सँड़सों से उनकी जीभ को पीड़ा दी जाती है और वे अत्यन्त घोर "निरुच्छ्वास" नामक नरक में आधे कल्प तक निवास करते हैं।

पर-स्त्री-लम्पट पुरुषों को प्राप्त होनेवाले नरक का वर्णन इस प्रकार है, तपाये हुए ताँबे की स्त्रियाँ सुन्दर रूप और आभरणों से युक्त होकर उनके साथ हठपूर्वक दीर्घकाल तक रमण करती हैं। उनका रूप वैसा ही होता है, जैसी स्त्रियों के साथ वे इस लोक में सम्बन्ध रखते रहे हैं। वह पुरुष उनके भय से भागता है और वे बलपूर्वक उसे पकड़ लेती हैं तथा उसके पापकर्म का परिचय देती हुई उन्हें क्रमशः विभिन्न नरकों में पहुँचाती हैं। इस लोक में जो स्त्रियाँ अपने पति को त्याग कर दूसरे पुरुष की सेवा स्वीकार करती हैं, उन्हें यमलोक में तपाये हुए लोहे के बलवान् पुरुष लोहे की तपी हुई शय्या पर बलपूर्वक गिराकर उनके साथ बहुत समय तक रमण करते हैं। उनसे छूटने पर वे स्त्रियाँ अग्नि के समान प्रज्वलित लोहे के खम्भे का आलिङ्गन कर एक हजार वर्ष तक खड़ी रहती हैं।

तत्पश्चात् उन्हें नमक मिलाये जल से नहलाया जाता है और खारे पानी का ही सेवन कराया जाता है। उसके बाद वे सौ वर्षों तक सभी नरकों की यातनाएँ भोगती हैं।

जो मनुष्य ब्राह्मण, गौ और क्षत्रिय राजा का इस लोक में वध करता है, वह भी पाँच कल्पों तक सम्पूर्ण यातनाओं को भोगता है।

जो महापुरुषों की निन्दा को आदरपूर्वक सुनते हैं, उन लोगों के कानों में तपाये हुए लोहे की बहुत-सी कीलें ठोक दी जाती हैं। तत्पश्चात् कानों के उन छिद्रों में अत्यन्त गरम किया हुआ तेल भर दिया जाता है। फिर वे "कुम्भीपाक" नरक में पड़ते हैं।

जो लोग भगवान् शिव और विष्णु से विमुख एवं नास्तिक हैं, वे यमलोक में करोड़ों वर्षों तक केवल नमक खाते हैं। उसके बाद एक कल्पतक तपी हुई बालू से पूर्ण "रौरव" नरक में डाले जाते हैं। इसी प्रकार अन्य नरकों में भी वे पापाचारी जीव अपने पापों का फल भोगते हैं।

जो नराधम कोपपूर्ण दृष्टि से ब्राह्मणों की ओर देखते हैं, उनकी आँख में हजारों तपी हुई सूइयाँ चुभो दी जाती हैं। तदनन्तर वे नमकीन पानी की धारा से भिगोये जाते हैं, इसके बाद उन पाप-कर्मियों को भयंकर क्रकचों (आरों) से चीरा जाता है।

जो लोग विश्वासघाती, मर्यादा को तोड़नेवाले तथा पराये अन्न के लोभी हैं, उन्हें भयंकर नरक की प्राप्ति होती है, वे अपना ही मांस खाते हैं और उनके शरीर को वहाँ प्रतिदिन कुत्ते नोच खाते हैं। उन्हें सभी नरकों में एक-एक वर्ष निवास करना पड़ता है।

जो सदा दान ही लिया करते हैं, जो केवल नक्षत्रों के ही पढ़ने-वाले (नक्षत्र-विद्या से जीविका करनेवाले) हैं तथा जो सदा देवलक (पुजारी) का अन्न भोजन करते हैं, वे पाप से पूर्ण जीव एक कल्पतक इन सभी यातनाओं में पकाये जाते हैं और वे सदा दुःखी होकर निरन्तर कष्ट भोगते रहते हैं। तत्पश्चात् कालसूत्र से पीड़ित

हो तेल में डुबोये जाते हैं। फिर उन्हें नमकीन जल से नहलाया जाता है और उन्हें मल-मूत्र खाना पड़ता है, इसके बाद वे पृथ्वी पर आकर म्लेच्छ जाति में जन्म लेते हैं।

जो सदा दूसरों को उद्वेग में डालनेवाले हैं, वे वैतरणी नदी में जाते हैं।

पञ्चमहायज्ञों का त्याग करनेवाले पुरुष "लालाभक्ष" नरक में पड़ते हैं। वहाँ उन्हें 'लार' खाना पड़ता है।

जो पुरुष उपासना का त्याग करते हैं, वे "रौरव" नरक में जाते हैं।

जो ब्राह्मणों के गाँव से 'कर' लेते हैं, वे जब तक चन्द्रमा और तारों की स्थिति रहती है, तब तक इन नरक यातनाओं में पकाये जाते हैं।

जो राजा गाँवों में अधिक कर लगाता है, वह पाँच कल्पों तक सहस्रों पीढ़ियों के साथ नरक भोगता है।

जो पापी ब्राह्मणों के गाँव से कर लेने की अनुमति देता है, उसने मानों सहस्रों ब्रह्महत्याएँ कर डालीं। वह दो चतुर्युगी तक महाघोर कालसूत्र में निवास करता है।

जो महापापी अयोनि (योनि से भिन्न स्थान) वियोनि (विजातीय योनि) और पशुयोनि में वीर्य-त्याग करता है, वह यमलोक में वीर्य ही भोजन के लिए पाता है। तत्पश्चात् चर्बी से भरे हुए कुएँ में डाला जाकर वहाँ सात दिव्य वर्षों तक केवल वीर्य-भोजन करके रहता है। उसके बाद मनुष्य होकर सम्पूर्ण लोकों में निन्दा का पात्र बनता है।

जो उपवास के दिन दाँतुन करता है, वह चार युगों तक "व्याघ्रभक्ष" नामक घोर नरक में पड़ा रहता है, जिसमें व्याघ्र उसका मांस खाते हैं।

जो अपने कर्मों का परित्याग करनेवाला है, उसे विद्वान् पुरुष

'पाखण्डी' कहते हैं। उसका साथ करनेवाला भी उसी के समान हो जाता है। वे दोनों अत्यन्त पापी हैं और सहस्रों कल्पों तक क्रमशः नरक यातनाएँ भोगते हैं।

जो देवता-सम्बन्धी द्रव्य का अपहरण करनेवाले और गुरु का धन चुरानेवाले हैं, वे ब्रह्महत्या के समान पाप का फल भोगते हैं।

जो अनाथ का धन हड़प लेते और अनाथ से द्वेष करते हैं, वे कोटिकल्प सहस्रों तक नरक में निवास करते हैं।

जो स्त्रियों और शूद्रों के समीप वेदाध्ययन करते हैं, उनका सिर नीचे करके पैर ऊपर कर दिया जाता है और दोनों पैरों को दो खम्भो में काँटे से जड़ दिया जाता है। फिर वे ब्रह्माजी के एक वर्ष तक प्रतिदिन धुआँ पीकर रहते हैं।

जो जल और देवमन्दिर में तथा उनके समीप अपने शारीरिक मल का त्याग करता है, वह भ्रूणहत्या के समान अत्यन्त भयानक पाप को प्राप्त होता है।

जो ब्राह्मण का धन तथा सुगन्धित काष्ठ चुराते हैं, वे चन्द्रमा और तारों की स्थिति-पर्यन्त घोर नरक में पड़े रहते हैं। ब्राह्मण के धन का अपहरण इहलोक और परलोक में भी दुःख देनेवाला है। इस लोक में तो वह धन का नाश करता है और परलोक में नरक की प्राप्ति कराता है।

जो झूठी गवाही देता है, वह जब तक चौदह इन्द्रों का राज्य समाप्त होता है, तब तक सम्पूर्ण यातनाओं को भोगता रहता है। इस लोक में उसके पुत्र, पौत्र नष्ट हो जाते हैं और परलोक में वह "रौरव" तथा अन्य नरकों को क्रमशः भोगता है।

जो मनुष्य अत्यन्त कामी और मिथ्यावादी हैं, उनके मुँह में सर्प के समान जोंकें भर दी जाती हैं। इस अवस्था में उन्हें साठ हजार वर्षों तक रहना पड़ता है। तत्पश्चात् उन्हें खारे पानी से नहलाया जाता है।

जो पुरुष ऋतुकाल में अपनी स्त्री से सहवास नहीं करते, वे ब्रह्म-हत्या का फल पाते और घोर नरक में जाते हैं।

जो किसी को अत्याचार करते देखकर शक्ति होते हुए भी उसका निवारण नहीं करता, वह भी उस अत्याचार के पाप का भागी होता है और वे दोनों नरक में पड़ते हैं।

जो लोग पापियों के पापों की गिनती करके दूसरों को बताते हैं, वे पाप सत्य होने पर भी उनके पाप के भागी होते हैं। यदि वे पाप झूठे निकले तो कहनेवाले को दूने पाप का भागी होना पड़ता है।

जो पापहीन पुरुष में पाप का आरोप करके उसकी निन्दा करता है, वह चन्द्रमा और तारों के स्थितिकाल तक घोर नरक में रहता है।

जो व्रत लेकर उन्हें पूर्ण किये बिना ही त्याग देता है, वह असिपत्रवन में पीड़ा भोगकर पृथ्वी पर किसी अङ्ग से हीन होकर जन्म लेता है।

जो मनुष्य दूसरों द्वारा किये जानेवाले व्रतों में विघ्न डालता है, वह मनुष्य अत्यन्त दुःखदायक और भयंकर "श्लेष्मभोजन" नामक नरक में जाता है जहाँ कफ भोजन करना पड़ता है।

जो न्याय करने तथा धर्म की शिक्षा देने में पक्षपात करता है, वह दस हजार प्रायश्चित्त कर ले, तो भी उस पाप से उसका उद्धार नहीं होता।

जो अपने कटुवचनों से ब्राह्मणों का अपमान करता है, वह ब्रह्म-हत्या को प्राप्त होता है और सम्पूर्ण नरकों की यातनाएँ भोगकर दस जन्मों तक चाण्डाल होता है।

जो ब्राह्मण को कोई चीज देते समय विघ्न डालता है, उसे ब्रह्म-हत्या के समान प्रायश्चित्त करना चाहिये।

जो पुरुष दूसरे का धन चुराकर दूसरों को दान देता है, वह चुरानेवाला तो नरक में जाता है और जिसका धन होता है, उसी को उस दान का फल मिलता है।

जो पुरुष कुछ देने की प्रतिज्ञा करके नहीं देता है, वह "लालाभक्ष" नरक में जाता है।

जो संन्यासी की निन्दा करता है, वह "शिलायन्त्र" नामक नरक में जाता है।

जो पुरुष बगीचा कटवाते हैं, वे इक्कीस युगों तक "श्वभोजन" नामक नरक में गिरते हैं, जहाँ कुत्ते उनका मांस नोचकर खाते हैं। फिर क्रमशः वह सभी नरकों की यातनाएँ भोगते हैं।

जो पुरुष देवमन्दिर तोड़ते, पोखरा नष्ट करते और फुलवारी उजाड़ देते हैं, वे इन सब यातनाओं (नरकों) में पृथक्-पृथक् पकाये जाते हैं। इसके बाद वे सौ बार चाण्डाल की योनि में जन्म लेते हैं।

जो झूठा खाते और मित्रों से द्रोह करते हैं, उन्हें चन्द्रमा और सूर्य की स्थिति काल तक भयंकर नरक यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं।

जो पितृयज्ञ और देवयज्ञ का उच्छेद करते तथा वैदिक मार्ग से बाहर हो जाते हैं, वे पाखण्डी के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्हें सब प्रकार की यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। इस प्रकार पापियों के लिए अनेक प्रकार की यातनाएँ हैं।

स्कन्दपुराण (आवन्त्यखण्ड-रेवा-खण्ड) में पापियों की नरक-यातनाका वर्णन यों लिखा है—

मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार क्रमशः एक-एक नरक का उपभोग करते हैं। अपनी कुत्सित कामनाओं के कारण जो कुकर्मों का संग्रह किया गया है, उसी के फलस्वरूप तपायी हुई लोहे की साँकल से बाँधकर अँधेरे में बड़े-बडे वृक्षों की शाखाओं में पापी मनुष्य लटका दिये जाते हैं। फिर यमदूत उन सबको बड़े जोर-जोर से झुलाते हैं। वेगपूर्वक झुलाये हुए वे सभी पापी अचेत हो जाते हैं। फिर आकाश में लटकते हुए उनके पैरों में सौ भार लोहा बाँध देते हैं। उस महान् भार से वे सब लोग अत्यन्त सन्तप्त होते हैं और अपने-अपने कर्मों का स्मरण करते हुए निश्चल भाव से मौन रह जाते हैं।

तत्पश्चात् क्रमशः आग में तपाकर खूब लाल किये हुए लोहे के कँटीले दण्डों से यमदूत उनके मस्तक पर मारते हैं। इसके बाद उन्हें विष्ठा और कीटों से भरे हुए कुएँ में डाल देते हैं। घोर यमदूत सब ओर से घेरकर पापियों को आग में पकाते हैं। उसके बाद उनके शरीर पर नमकीन पानी डाल देते हैं। कितने ही पापियों को लोहे के कड़ाहे में बैंगन की तरह भूनते हैं, फिर गन्दे कुएँ में डाल देते हैं। मेदा, रक्त और पीब से भरी हुई बावली में पापियों को फेंक दिया जाता है और वहाँ उन्हें कीड़े तथा कौए लोहे के समान तीखी चोंचों से नोच-नोचकर खाते हैं। कितने ही पापी मनुष्यों को तीखे त्रिशूलों में गुम्फित करके उन्हें धधकते हुए अङ्गारों पर मांस की भाँति पकाया जाता हैं। इसी प्रकार यमदूत पापियों को खूब तपे हुए तेल से भरे कड़ाहों में अनेक बार पकाते हैं। जो असत्य और अप्रिय बोलनेवाले हैं, उनकी छाती पर चढ़कर और पाँव से दबाकर तपाये हुए मजबूत सँड़से से उनकी जीभ उखाड़ ली जाती है। दम्भ-पूर्ण झूठे शास्त्र से प्रेरित होकर जो ब्राह्मण यज्ञ के नाम पर अधिक धन का संग्रह करता है, उसकी जिह्वा भी तीखे भाले से छेदी जाती है। जो मूढ़ मानव माता-पिता और गुरु को फटकारते हैं, उनके मुँह में बार-बार बालू भरकर पानी से सींचा जाता है। तदनन्तर खारा और गरम जल भरा जाता है। फिर खौलते हुए तेल का उड़ेल दिया जाता है। यमदूत उन पापियों के पैर पकड़कर कीड़ों से भरी हुई विष्ठा पर घसीटते हैं। फिर सींग से दबाकर उन्हें लोहे के शाल्मलि वृक्ष में बाँध दिया जाता है। उसके बाद वे महाबली भयानक दूत उन्हें पीछे की ओर से मारते हैं। अत्यन्त प्रबल दाँती-दार आरे से मस्तक की ओर से चीरते हैं। अपने भयानक कर्मों के परिणाम से वे पापी जीव भूख लगने पर अपना ही मांस खाते और प्यास लगने पर अपना ही रक्त पीते हैं। जिन मूढ़ पुरुषों ने कभी अन्न और जल का दान नहीं किया है और न किसी के दान का अनुमोदन

ही किया है, वे मुद्गरों से जर्जर करके ईख की तरह पेरे जाते हैं। घोर असिताल बन में खण्ड-खण्ड करके काटे जाते हैं। उनके सब अङ्गों में सूई चुभोयी जाती है। तत्पश्चात् उन्हें शूली पर चढ़ा दिया जाता है। शूली पर चढ़ाकर उन्हें बार-बार हिलाया और खींचा जाता है। फिर भी उनकी मृत्यु नहीं होती। उनके शरीर से मांस नोच लिया जाता है। लोहे के मुद्गरों से मारकर उनकी हड्डियाँ चूर-चूरकर दी जाती हैं। बलोन्मत्त यमदूत उस दशा में भी उन्हें अनेक बार जल्दी-जल्दी घसीटते हैं और वे पापी जीव दीर्घ काल तक नरक में रहकर दारुण यातनाएँ भोगते हैं। उनका मुँह बालू से भरा होता है, इसलिये वे स्वाँस तक नहीं ले पाते। इन सब यातनाओं के बाद अनेक प्रकार के यमदूत "रौरव" आदि नरकों में उन्हें पीड़ा देते हैं। महारौरव की पीड़ाओं से महान् धीर पुरुष भी रो देते हैं। मुख, लिङ्ग, गुदा, पार्श्व, पैर, छाती और मस्तक में तपाये हुए लोहे के तीखे मुद्गरों से यमदूत मारते हैं। जो स्त्रियाँ पराये पतियों का आलिङ्गन करती हैं और अपने पति की सेवा में नहीं रहती, ऐसी स्त्रियों को यमदूत "लौहकुम्भ" नामक नरक में फेंक देते हैं और उन्हें धीरे-धीरे पकाते हैं। कभी उन्हें प्रज्वलित अग्नि में राँधते हैं, तप्त-शिलाओं पर बिठाते हैं, अँधेरे कुएँ में डालते हैं और अजगर सर्पों द्वारा डँसाते हैं। जो धर्म का उपदेश देनेवाले महात्मा आचार्य की निन्दा करते हैं, शिवभक्त ब्राह्मण तथा सनातन शिवधर्म पर दोषारोपण करते हैं, उनकी छाती, कण्ठ, जिह्वा, शरीर की सन्धियों तथा दोनों ओठों में काँटी ठोंककर यमदूत उन्हें कील देते हैं।

इस प्रकार पापाचारी पुरुषों को यमलोक में बड़ी भयानक यातनाएँ दी जाती हैं। एक-एक नरक में सैकड़ों और सहस्रों प्रकार की ऐसी यातनाएँ जाननी चाहिए, जो समस्त पापकर्मियों को प्राप्त होती हैं। सम्पूर्ण नरकों में ऐसी-ऐसी अनन्त पीड़ाएँ भोगनी पड़ती हैं। अपने-अपने कर्मों से नरकों में गिराये पापी जीव क्रमशः सभी नरकों में पकाये जाते हैं। महापातकी मनुष्य सब नरकों में चन्द्रमा

और नक्षत्रों की स्थिति कालतक अनेकानेक यमदूतों द्वारा पीड़ा भोगते रहते हैं। यही दशा पातकियों की भी होती है। उपपातकियों को इनसे आधी यातना प्राप्त होती है।

नरकमें जानेवाले पुरुष—

परुषाः पिशुनाश्चैव मानिनोऽनृतवादिनः।
अनिबद्धप्रलापाश्च नरा निरयगामिनः॥
(पद्मपुराण, भूमिखण्ड ९६।५)

'कठोर, चुगलखोर, अभिमानी, मिथ्याभाषी और असम्बद्ध प्रलाप करनेवाले मनुष्य नरकगामी होते हैं।'

कूपानाञ्च तडागानां प्रपानाञ्च परन्तप।
रथ्यानाञ्चैव भेत्तारस्ते वै निरयगामिनः॥
(पद्मपुराण, भूमिखण्ड १६।८)

'कुएँ, तालाब, प्याऊगृह और मार्गादि को हानि पहुँचानेवाले दुष्ट लोग नरकगामी होते हैं।'

यतीनां दूषका राजन् सतीनां दूषकास्तथा।
वेदानां दूषकाश्चैव ते वै निरयगामिनः॥
(पद्मपुराण, भूमिखण्ड १६।१०)

'यतियों, सतियों और वेदों के दूषक अर्थात् निन्दा करनेवाले लोग नरक में जाते हैं।'

आद्यं पुरुषमीशानं सर्वलोकमहेश्वरम्।
न चिन्तयन्ति ये विष्णुं ते वै निरयगामिनः॥
(पद्मपुराण, भूमिखण्ड ९६।११)

'सर्वलोक महेश्वर आदि पुरुष भगवान् शंकर और विष्णु का जो चिन्तन नहीं करते, वे नरक में जाते हैं।'

हड़पने वाला और गाँव की सीमा चुरानेवाला, ये सब नरक में जाते हैं और पति को ठगनेवाली स्त्री भी नरकगामिनी बनती है।'

स्वर्गमें जानेवाले पुरुष—

ये च होमजपस्नानदेवतार्चनतत्पराः ।
श्रद्दधाना महात्मानस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड ९६।२१)

'होम, जप, स्नान और देवताओं के पूजन में सदा लगे रहनेवाले श्रद्धालु महात्मा स्वर्ग में जाते हैं।'

सत्येन तपसा क्षान्त्या दानेनाध्ययनेन च ।
ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड ९६।२६)

'सत्य, तपस्या, क्षमा, दान और वेदशास्त्रों के स्वाध्याय द्वारा जो धर्म का अनुष्ठान करते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

द्विषतामपि ये दोषान्न वदन्ति कदाचन ।
कीर्तयन्ति गुणानेव ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड ९६।३२)

'जो लोग शत्रुओं के भी दोष कभी नहीं कहते, किन्तु गुणों का ही बखान करते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च वेदशास्त्रोक्तवर्त्मना ।
आचरन्तो महात्मानस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड ९६।३५)

'वेदशास्त्रों के अनुसारी मार्ग से जो लोग कार्यों में प्रवृत्ति तथा निवृत्ति करते हैं, वे महात्मा स्वर्ग में जाते हैं।'

आतिवाहिक शरीर प्रेतयोनि में जानेवालों को प्राप्त होना अनिवार्य है।

मनुष्य को प्रेतयोनि क्यों मिलती है? यह बात पहले लिखी जा चुकी है कि मन में संस्कार-रूप से रहनेवाली वासना के अनुसार मनुष्य का जन्म होता है। भगवान् पतञ्जलि ने अपने 'योगसूत्र' में लिखा है कि—

'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।'

(योगसूत्र, साधनपाद-१३)

मनुष्य की श्रद्धा तीन प्रकार की होती है—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। सात्त्विक स्वभाववाले देवता की पूजा करते हैं, राजसिक स्वभाववाले यक्ष, राक्षस आदि की पूजा करते हैं और तामसिक स्वभाववाले भूत-प्रेत की पूजा करते हैं। जैसा कि भगवान् कृष्ण ने गीता में स्वयं कहा है—

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥

(गीता १७।४)

इस श्लोक से भगवान् ने भूत, प्रेत की भी एक योनि मानी है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रेतों की भी एक योनि है और वह सत्य है। अब विचारना यह है कि प्रेतयोनि क्यों और किन पुरुषों को मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होती है? इस विषय में भी भगवान् ने गीता में लिखा है—

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥

(गीता ९।२५)

सात्त्विक प्रकृतिवाले मनुष्यों की श्रद्धा देवताओं पर होती है, इसलिये वे देवताओं की पूजा करते हैं और उनके मन में सात्त्विक संस्कार रहते हैं। इसलिये उन्हें देवलोक की प्राप्ति होती है। राजस मनुष्यों की श्रद्धा पितरों पर होती है। सतत पितरों के चिन्तन से उनके मन में पितरों का संस्कार बन जाता है। इसलिये मृत्यु के पश्चात् उन्हें 'पितृलोक' प्राप्त होता है। इसी तरह तामस प्रकृतिवाले भूत-प्रेतों की आराधना करते हैं, अतः भूत-प्रेतों के सतत चिन्तन से भूत-प्रेतों का संस्कार उनके मन पर रहता है और वे प्रेतलोक की प्राप्ति करते हैं। प्रेतयोनि प्राप्त होने में प्रधानतः छः कारण हैं—

१—जो तामस स्वभाववाले हैं, वे भूत-प्रेतों की पूजा करते हैं, जिनका भोजन-पान तामसिक है, आचरण भी शास्त्र विरुद्ध हैं, उनको मृत्यु के बाद 'आतिवाहिक शरीर' प्राप्त होता है और वे प्रेतलोक में भेज दिये जाते हैं। वहाँ वायु-प्रधान शरीर होने से निरन्तर निरालम्ब घूमते रहते हैं और भूख-प्यास से पीड़ित रहते हैं।

२—इस लोक में जिनकी किसी पदार्थ में प्रवल आसक्ति रहती है या किसी मनुष्य के साथ प्रबल द्वेष रहता है, अथवा किसी पदार्थ या सम्बन्धी पर ममता रहती है, उन्हें प्रेतयोनि में जाना पड़ता है। इन प्रणियों को प्रेतयोनि में बहुत कष्ट होता है, अतः मृत्यु के पहले आसक्ति और द्वेष-भावनाओं का त्याग कर देना चाहिये।

३—जिनकी अन्त्येष्टि क्रिया, विधिवत् दाह-संस्कार और श्राद्धादि कर्म नहीं होते, उनके प्रेतयोनि में बहुत दिनों तक रहना पड़ता है।

४—मद्यपान करनेवाले, चोरी करनेवाले, डाका देनेवाले, हत्या करनेवाले तथा परस्त्रीगमन करनेवाले एवं शास्त्रविरुद्ध आचरण करनेवाले, किसी प्राणी को कष्ट देनेवाले और दूसरे से कष्ट दिलाने वाले को प्रेतयोनि प्राप्त होती है।

५—आत्महत्या करनेवाले, अकालमृत्यु पानेवाले, विश्वासघात करनेवाले, पशु-पक्षियों को कसाइयों के हाथ बेचनेवाले अथवा बेचने के लिये उत्साहित करनेवाले आदि को प्रेतयोनि में जाना पड़ता है।

६—किसी के कहने से धन के लिये किसी की हत्या करनेवाले और अपने पाप के भण्डाफोड़ होने के डर से किसी निरपराध व्यक्ति की हत्या करनेवाले मनुष्य को प्रेतयोनि की प्राप्ति होती है तथा इस तरह मृत्यु-प्राप्त व्यक्ति भी अपने शेष जीवन की अवधि तक प्रेतयोनि में निवास करता है।

उपर्युक्त छः कारण प्रेतत्व प्राप्त करने के कारणों में मुख्य हैं। और भी इस तरह के अनेकों पापकर्म हैं, जिनसे प्रेतयोनि प्राप्त करना पड़ता है। जब मन में पुण्य या पाप की वासना रहती है, तभी वासना के अनुसार उन-उन योनियों में जन्म होता है। उनकी जैसी आयु होती है, तदनुसार ही भोग भोगना पड़ता है। इसी बात को **"सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः"** इस सूत्र से महर्षि पतञ्जलि ने बतलाया है। किन्तु ये जाति, आयु, भोग, पुण्यात्मक संस्कार और पापात्मक संस्कार दोनों से प्राप्त होते हैं। इसीसे किसी का जन्म अच्छे धार्मिक परिवार में होता है और उसका भी स्वभाव धार्मिक होता है। आयु भी किसी की थोड़ी होती है और वह कष्टमय होती है। किसी की आयु बड़ी होती है, किन्तु दुःखमय बीतती है। भोग प्राप्त होने पर भी भोग-शक्ति न रहने से भोग भी दुःखद होता है। किसी के लिये भोग-सामग्री और शक्ति दोनों प्राप्त होती है और सुखदायक होती हैं। इस बात को महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है—

"ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात्।"

तात्पर्य यह है जो जन्म पुण्यकर्म का परिणाम-स्वरूप होता है, वह सुखदायक होता है और जो पापकर्म का परिणाम-स्वरूप होता है, वह दुःखदायक होता है। इसी तरह आयु का जितना भाग पुण्यकर्म के

परिणाम-स्वरूप होता है, उतना सुखप्रद होता है और जितना भाग पापकर्म के परिणाम-स्वरूप होता है, उतना दुःखमय व्यतीत होता है। अतः तामस प्रकृतिवाले मनुष्यों के पापमय कर्म के परिणाम-स्वरूप प्रेतयोनि की प्राप्ति होती है। इससे इस योनि का जन्म और इस योनि में प्राप्त आयु भी दुःखमय ही होती है। इस लोक में जैसे सभी मनुष्यों की शक्ति, स्वभाव और कार्य एक समान नहीं होते, वैसे ही प्रेतयोनि में भी शक्ति, स्वरूप, सामर्थ्य और कार्य एक समान नहीं होते। सभी प्रेतों के शरीर वायु-प्रधान होते हैं, इसलिये इनकी गति अबाध होती है। मनुष्य-शरीर में आविष्ट होने का सामर्थ्य इनमें होता है। इनमें भी पुरुष और स्त्री दो जातियाँ होती हैं। मनुष्य के शरीर में आविष्ट होनेवाले प्रेत क्रूर स्वभाव के होने से बहुत कष्ट देते हैं और कभी-कभी मार भी डालते हैं। खासकर जो द्वेषपूर्ण विचार को अपने मन में रखकर मृत्यु को प्राप्त करते हैं, वे प्रेत अपने शत्रु के शरीर में आविष्ट होकर बहुत कष्ट देते हैं और उसकी हत्या भी कर देते हैं।

प्रेतोंके रहनेका स्थान

प्रेत स्वयं अपवित्र होते हैं और अपवित्र स्थान पर ही रहते हैं। ये तमोगुणी होते हैं। तमोगुण सत्त्वगुण का आच्छादक है, अतः सात्त्विक पवित्र स्थान और प्रकाश इनको रहने के लिये अनुकूल नहीं होता। इनकी शक्ति हिंसक पशुओं और राक्षसों की तरह रात में ही प्रबल होती है। इनमें जैसा चाहें वैसा स्वरूप धारण करने की शक्ति होती है। ये पुराने मकानों के खण्डहरों में रहते हैं और जहाँ कभी दीपक नहीं जलाये जाते, वहाँ भी रहते हैं। खुले मैदानों में जहाँ मनुष्य कम जाते हैं, वहाँ दिन में भी प्रेत दिखलायी पड़ सकते हैं, अतः उन स्थानों में अकेले नहीं जाना चाहिये। स्त्रियों के नग्न स्नान करने की जगह में, तालाब या नदी के किनारे, पीपल आदि वृक्षों पर, सूनसान जगह में, पेड़ के नीचे, श्मशान-भूमि में, कब्र के

पास, कुएँ के पास और मलमूत्र करने के स्थान में प्रेतों का निवास होता है। अतः इन स्थानों में रात्रि के समय अथवा दिन में दोपहर के समय भी सहसा नहीं जाना चाहिये। मनुष्य जब अपवित्र रहते हैं, तभी भूत, प्रेतों का आक्रमण उनपर होता है। मल-मूत्र करने के पश्चात् हाथ, पैर अच्छी तरह धोकर और कुल्ला करके पवित्र हो जाना चाहिये। कमजोर हृदयवालों पर इनका आक्रमण विशेष रूप से होता है। जब कभी एकान्त स्थान मे मनुष्य-रूप में अथवा किसी पशु के रूप में भी ये दिखायी देते हैं। ऐसे किसी असम्भावित स्थान में अद्भुत रूप में दृष्टिगोचर हो जाने पर मनुष्य को डरना नहीं चाहिये और न पहले उनसे बोलने का साहस ही करना चाहिये। यदि वे ही कुछ पूछें, तो उसका उत्तर संयत और नम्र भाव से सत्यतापूर्वक देना चाहिये। यदि गायत्री-मन्त्र जानते हों, तो मन ही मन जपते रहना चाहिये। यदि न जानते हों, तो हनुमानचालीसा का पाठ करना चाहिये। यदि वह भी न मालूम हो, तो भगवन्नामका जप करना चाहिये। इससे प्रेत पास में नहीं आते और न आक्रमण ही करते। इस तरह भगवन्नाम लेने से आत्मा और शरीर दोनों ही पवित्र हो जाते हैं और पवित्रता उन प्रेतों के अनुकूल नहीं होती। प्रेतयोनि में बहुत कष्ट होता है, इसलिये प्रेतयोनि जिसमें न प्राप्त हो, उसके लिये मनुष्य को अपने जीवन में ही उपाय करना चाहिये। इसका उपाय यही है कि भगवान् के नाम का जप मनुष्य करे, श्रीमद्भागवत का सप्ताह सुने, रामायण का प्रतिदिन पाठ करे, विष्णुसहस्रनाम पढ़े, हनुमानचालीसा का १०८ पाठ प्रति मङ्गलवार को हनुमानजी की पूजा करके करे। यदि अधिक सम्भव न हो तो यथाशक्ति भगवन्नाम-स्मरण तथा देवोपासना करनी चाहिये। इन सब कार्यों के करने से प्रेतबाधा जीवन में नहीं होती और मृत्यु के पश्चात् प्रेतयोनि भी नहीं मिलती। भगवान् राम और कृष्ण के नामों में वह शक्ति है, जो पापियों की भी यम-यातनाओं से रक्षा करती है।

मृत्यु-विवेचन

मृत्यु दो तरह की होती है। एक 'काल मृत्यु' और दूसरी 'अकाल मृत्यु'। वस्तुतः देखा जाय तो सबकी मृत्यु 'काल मृत्यु' से ही होती है। ईश्वर ने जन्म के समय जितनी आयु दी है, उससे पहले किसी की मृत्यु हो ही नहीं सकती। यह सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि जन्म और मृत्यु ये दोनों ही ईश्वर के विधान के अनुसार ही होते हैं, परन्तु सब लोग इस बात को मानते हैं कि 'अकाल मृत्यु' भी होती है। बौद्धदर्शन के अनुसार चार कारणों से मृत्यु का विधान किया गया है। पहला कारण है आयु का क्षय, दूसरा कारण है कर्मफल का क्षय, तीसरा कारण है कर्मफल और आयु दोनों का क्षय तथा चौथा कारण है उपक्षेदक (आकस्मिक मृत्यु)। पहली मृत्यु जितने दिनों तक ईश्वरीय विधान के अनुसार आयु प्राप्त थी, उसका क्षय हो जाने से साधारण रूप से मृत्यु हुई। दूसरी मृत्यु कर्मफल की समाप्ति हो जाने से इस पाञ्चभौतिक शरीर के नष्ट हो जाने से जो मृत्यु होती है, वह कर्मक्षय के कारण होती है। जैसे जन्म होते ही मृत्यु अथवा युवावस्था की मृत्यु 'कर्मक्षय मृत्यु' है। तीसरी मृत्यु कर्मफल और आयु के एक साथ समाप्त होने पर रोगग्रस्त होकर होती है, इसे 'उभयक्षय मृत्यु' कहते हैं। चौथे प्रकार की मृत्यु आकस्मिक घटना-जन्य होती है, इसे 'उपक्षेदक मृत्यु' कहते हैं। आँधी, बाढ़, आग, मोटर आदि की दुर्घटना से प्राप्त मृत्यु 'उपक्षेदक मृत्यु' कहलाती है, इसे ही लोग 'अकाल मृत्यु' भी कहते हैं। आत्महत्या को भी 'अकाल मृत्यु' कह सकते हैं। यह मृत्यु जघन्य मृत्यु है, इसलिये इसकी गणना पूर्वोक्त चार मृत्यु के कारणों के अन्तर्गत नहीं होती। इसको 'जघन्य मृत्यु' कह सकते हैं, क्योंकि मर जाने की चेष्टा ही अनधिकार चेष्टा है।

तमोगुण के प्रभाव से जब विवेक-शक्ति बिलकुल नष्ट हो जाती है, तब आत्महत्या करने का विचार होता है। साथ ही जब किसी

अत्याचारी के अत्याचार से बचने का कोई बाह्य साधन नहीं मिलता और भगवन्नाम पर विश्वास नहीं रहता, तब मनुष्य विवश होकर मृत्यु की शरण लेता है। उस अवस्था में भी वह मरना नहीं चाहता, जीवित रहने की ही इच्छा रहती है और अत्याचारी से प्रतिशोध लेने की भावना उसमें वर्त्तमान रहती हैं। अतः उसे मृत्यु के बाद प्रेतयोनि प्राप्त होती है और जब तक वह प्रतिशोध नहीं ले लेता, तब तक प्रेतयोनि में रहता है। यदि किसी कारणवश प्रतिशोध का अवसर प्राप्त नहीं होता, तो उस योनि में भी कर्मफल भोगकर फिर जन्म ग्रहण करता है और अपना प्रतिशोध कार्य पूरा करता है।

स्त्रियाँ जो प्रसव के समय अथवा रजस्वला होने के समय मरती हैं, वे प्रेतयोनि में स्त्री होती हैं, जिन्हें 'चुड़ैल' कहते हैं, परन्तु जो स्त्रियाँ अपने सतीत्व की रक्षा के लिये निरुपाय होकर आत्महत्या करती हैं, उनको प्रेतयोनि बहुत थोड़े दिनों के लिये प्राप्त होती है। उनको प्रेतयोनि में भी कष्ट नहीं होता, क्योंकि मृत्यु के समय उनके मन में पवित्र भावना रहती है। इसके विपरीत सतीत्व नष्ट करनेवाले अत्याचारी को नरक की घोर यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। नरक की यातना भोगने के पश्चात् मलमूत्र में रहनेवाले कीड़े, वृक्ष, प्रस्तर आदि योनियों में आकल्प रहना पड़ता है। यदि सतीत्व भ्रष्ट हो जाने के पश्चात् क्रोध से, लोकलज्जा से, समाज-द्वारा अपमानित किये जाने के भय से कोई स्त्री आत्महत्या करती है, तो उसे आत्महत्या का पाप लग सकता है। क्योंकि सतीत्व भ्रष्ट हो जाने के कारण आत्मग्लानि, क्रोध और समाज से अपमानित होने का भय आदि उसके प्रारब्ध के फल हैं, जिन्हें उसे भोगना ही पड़ेगा। उनसे बचने के लिये जो उसने आत्महत्या की, वह उसकी अनधिकार चेष्टा हुई। अत्याचारी से सतीत्व की रक्षा के लिये की गयी आत्महत्या धर्म के लिये बलिदान करने के समान ही है। ऐसा न होने पर आत्महत्या एक पापकर्म है। जिस तरह जन्म लेना अपने हाथ की बात नहीं होती, वैसे ही

आत्महत्या कर लेना भी अपने अधिकार के अन्तर्गत नहीं होता। ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध जीवन नष्ट करना एक पापकर्म हो जाता है।

धर्मशास्त्रों में कुछ पापों के प्रायश्चित्त में भी जीवनोत्सर्ग का विधान है और उनकी कई विधियाँ भी हैं। जैसे भृगुपतन है अर्थात् पर्वत के शिखर से अथवा किसी ऐसी ऊँचाई से गिर जाना, जिससे गिरने पर जीवित रहने की सम्भावना न हो। दूसरा आत्मदाह। रोगादि के कारण सन्यासाश्रम के नियम-पालन में असमर्थ होने पर चिता जलाकर उसमें कूदकर प्राणोत्सर्ग करना। तीसरा—धीरे-धीरे मन्द अग्नि में अपने को जलाकर मर जाना, जिसको शुद्ध शैव-धर्म के प्रचारक 'कुमारिल भट्ट' ने किया था। कुमारिल भट्ट ने झूठ बोलकर बौद्धधर्म की शिक्षा ली थी, इस झूठ बोलने के पाप से मुक्ति पाने के लिये तुषाग्नि (धानके छिलकों की अग्नि) में उन्होंने अपना शरीर समर्पण किया था।

रामायण में यह कथा आयी है कि शरभङ्ग ऋषि ने भगवान् राम का दर्शन करके उनके सामने ही चिता की अग्नि में कूदकर अपने शरीर का त्याग किया था। महाभारत में भी भीष्म पितामह की कथा प्रसिद्ध है। वे इच्छा-मृत्युवाले पुरुष थे। उन्होंने शरशय्या पर लेटे रहकर छः महीने तक अपने शरीर से प्राणों को निकलने से रोक रखा था। उन्हें ऐसी योग-क्रिया का ज्ञान था, जिससे वे जितने दिनों तक चाहते, जीवित रह सकते थे। उन्होंने सूर्य उत्तरायण होने के पश्चात् इस पाञ्चभौतिक शरीर से प्राणों को बाहर निकाला।

शास्त्रीय दृष्टि से इन मृत्युओं की 'आत्महत्या' की संज्ञा नहीं है, तथापि कानून की दृष्टि से यह अपराध है। कहा जाता है कि ऐसे व्यक्ति शरीर को छोड़कर अर्चिमार्ग से होकर ब्रह्म में लीन हो जाते हैं, इनका पुनर्जन्म नहीं होता। गीता में लिखा है—'उत्तरायण सूर्य में मृत्यु-प्राप्त पुरुष देवयान से जाकर अपने पुण्यों के फलस्वरूप स्वर्गलोक की प्राप्ति करते हैं तथा दक्षिणायन सूर्य के समय जिनकी मृत्यु होती है, वे धूम्रयान से जाकर पितृलोक की प्राप्ति करते हैं।'

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥
धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥

(गीता ८।२४–२५)

तात्पर्य यह है कि उत्तरायण सूर्य के छः महीने के भीतर मृत्यु प्राप्त करनेवाले तथा शुक्ल पक्ष में मृत्यु प्राप्त करनेवाले अग्नि अभिमानी देवता, ज्योति के अभिमानी देवता ब्रह्मवेत्ता योगी को ब्रह्म के पास पहुँचा देते हैं और उनका पुनः इस संसार में आगमन नहीं होता। पुनः दक्षिणायन सूर्य में मृत्यु प्राप्त करनेवाले मनुष्य को रात्रि के अभिमानी देवता तथा धूम के अभिमानी देवता चन्द्रमा की ज्योति के मार्ग से पितृलोक में पहुँचा देते हैं और उन्हें पुनः इस पृथिवी पर जन्म ग्रहण करना पड़ता है। इन दोनों मार्गों को 'शुक्ल गति' और 'कृष्ण गति' कहते हैं।

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥

(गीता ८।२६)

शुक्ल गति प्राप्त करनेवाले ब्रह्म में लीन होते हैं, अतः उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती। ब्रह्मज्ञान के द्वारा उनके कर्मफल भस्म हो जाते हैं। इस कारण उनका पुनर्जन्म नहीं होता। सकाम भाव से देवताओं की आराधना करनेवाले एवं पितरों के उपासक लोग देवलोक या पितृलोक की प्राप्ति करते हैं, जहाँ अभीष्ट सुखभोग के उपरान्त वे पुनः इस लोक में अवतीर्ण होते हैं।

भगवान् के भक्तों के लिये यह नियम नहीं है। भगवान् का भक्त चाहे उत्तरायण सूर्य में मृत्यु प्राप्त करे या दक्षिणायन में, वह भगवत्कृपा

से मृत्यु के पश्चात् सद्गति से भगवान् को प्राप्त करता है। पहले लिखा गया है कि मृत्यु के बाद आतिवाहिक शरीर मिलता है। योगियों तथा संन्यासियों को वह शरीर प्राप्त नहीं करना पड़ता और शीघ्र ही वे भगवान् में लीन हो जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मुख से ही अपने विशेष नियमों की घोषणा की है। यथा—

अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥
(गीता ८।५)

इस घोषणा के द्वारा भगवान् ने कोई शर्त नहीं रखी है। चाहे वह धर्मात्मा हो या पापात्मा, अन्त समय में जो उनका स्मरण करेगा, वह उन्हें प्राप्त कर लेगा। अब प्रश्न यह उठता है कि अन्तकाल का क्या अर्थ है ? मृत्यु के एक क्षण पूर्व यदि इसका अर्थ किया जाय, तो उस समय सभी इन्द्रियाँ मन के साथ ही शक्तिहीन हो जाती हैं। जैसे मूर्च्छा या निद्रा में इन्द्रियों की सारी क्रियाएँ लुप्त हो जाती हैं। जीव भी सुप्तावस्था में रहता है तो फिर भगवान् का स्मरण कैसे कोई कर ककता है ? इस तरह अन्तकाल में स्मरण कोई करेगा ही नहीं और भगवान् की घोषणा निरर्थक हो जायगी। किन्तु पुण्यात्मा प्राणियों कोअन्तिम श्वास तक चेतना बनी रहती है और वे नाम-स्मरण करते-करते ही प्राण-त्याग करते हैं। इनकी सद्गति में कोई संशय नहीं। अतः अन्तकाल का अर्थ संज्ञाशून्य होने के पूर्व क्षण में करना चाहिये। उस समय पूर्वजन्मकृत पुण्य से अथवा कष्ट में नाम लेने के अभ्यास से अथवा दूसरे के मुख से भगवान् का नाम सुनने से इन्द्रियों के सक्रिय रहने के कारण भगवान् के नामवाले किसी प्रिय सम्बन्धी के स्मरण से भगवान् की स्मृति की सम्भावना है।

अजामिल का ऐसा एक उदाहरण भी पुराणों में प्राप्त है। यमराज के दूतों की भयानक मूर्ति देखकर अजामिल डर गया था और

प्रेमवश आसक्ति के कारण उसने अपने पुत्र 'नारायण' को पुकारा था। इससे उसे यमदण्ड से छुटकारा मिल गया था। यवन को सूअर से चोट लगी और उसने अभ्यासवश 'हराम' कहा, जिससे उसकी सद्गति हो गयी। भगवान् का विशेष नियम चरितार्थ हुआ। 'नारायण' और 'हराम' शब्दों के उच्चारण को आकस्मिक घटना मात्र ही कहा जायगा, किन्तु दयालु भगवान् ने उन्हें मुक्तिदान देकर अपनी घोषणा सत्य प्रमाणित की।

मृत्युके समय भगवन्नामका महत्त्व

चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण करता हुआ जीवात्मा भगवत्कृपा से मनुष्य-योनि को प्राप्त करता है। जीव जब गर्भावस्था में आता है, तो वह वहाँ के भयङ्कर कष्टों से पीड़ित होकर अपने आत्मोद्धार के लिये भगवान् की स्तुति करता हुआ सर्वदा भगवन्नामोच्चारण करने की प्रतिज्ञा करता है। किन्तु वह जीव जब गर्भ से बाहर आता है, तब अपनी की हुई प्रतिज्ञा को भूलकर सांसारिक माया-मोह में आसक्त हो जाता है। सांसारिक माया-मोह में आसक्त होने के कारण वह जीव आत्मोद्धार न कर वही कर्म करता है, जिससे बन्धन को प्राप्त होकर सर्वदा जन्म-मरण में चक्र में फँसा रहता है—

'तदर्थं कुरुते कर्म यद् बद्धो याति संस्थितिम्।'

(श्रीमद्भागवत ३।३१।३१)

मानव-जन्म बड़ा ही दुर्लभ है। भगवत्कृपा से मानव-जन्म को प्राप्त कर जो मनुष्य आत्मोद्धार नहीं करता, उसका मानव-जन्म धारण करना ही व्यर्थ है। अतः मनुष्य को आत्मोद्धारार्थं अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। आत्मोद्धार के लिये भगवन्नामोच्चारण ही सर्वश्रेष्ठ सहज साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य आत्मोद्धार कर सकता है।

भगवान् ने मनुष्य के शरीर में हाथ, पैर, मुख, वाणी, कान, नाक, मन आदि जो अङ्ग दिये हैं, वे सभी भगवत्सेवार्थ दिये हैं। अतः भगवान् के दिये हुए हाथ, पैर आदि से भगवान् के तत्-तत् अङ्ग की सेवा करनी चाहिये।

भगवान् ने मनुष्य के शरीर में मुख का जो निर्माण किया है, वह केवल भोजन करने के लिये नहीं, किन्तु भगवन्नामोच्चारण के करने के लिये किया है। अतः मनुष्य को भगवन्नामोच्चारण करके ही भोजन करना चाहिये। जो मनुष्य भगवन्नामोच्चारण न कर केवल भोजन करता है, वह महापापी और भगवान् का विरोधी है।

वस्तुतः मनुष्य के मुख की यथार्थ शोभा और यथार्थ उपयोग भगवन्नामोच्चारण करने से ही है। जो मनुष्य अपने मुख से भगवन्नामोच्चारण नहीं करता, उसका मुख निरर्थक ही है। इसलिये मनुष्य को अपने मुख को सार्थक करने के लिये सर्वदा भगवन्नामोच्चारण करना चाहिये।

भगवान् ने मनुष्य के मुख में जो वाणी दी है, वह व्यर्थ की बातें करने के लिये नहीं दी है, किन्तु भगवान् की लीलाओं के गायन करने के लिये दी है। जो मनुष्य अपनी वाणी के द्वारा भगवान् की लीलाओं का गायन नहीं करता, उसकी वाणी मेंढक की जीभ के सदृश कही गई है—

जिह्वा सती दार्दुरिकेव सूत
न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥
(श्रीमद्भागवत २।३।२०)

'जिस मनुष्य की जीभ भगवान् की लीलाओं का गायन नहीं करती, वह मेंढक की जीभ के समान टर्र-टर्र करनेवाली है। उसका तो न रहना ही अच्छा है।'

और भी कहा है—

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा
न कथ्यते यद् भगवानधोक्षजः।
तदेव सत्यं तदुहैव मङ्गलं
तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥

तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥

न तद् वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद् ध्वाङ्क्षतीर्थं न तु हंससेवितं
यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः ॥

(श्रीमद्भागवत १२।१२।४८-५०)

'जिस वाणी के द्वारा अविनाशी भगवान् श्रीकृष्ण के नाम, लीला, गुण आदि का उच्चारण नहीं होता, वह वाणी भावपूर्ण होने पर भी निरर्थक है, सुन्दर होने पर भी असुन्दर है और सर्वोत्तम विषयों का प्रतिपादन करनेवाली होने पर भी असत्कथा है। जो वाणी और वचन भगवान् के गुणों से परिपूर्ण रहते हैं, वे ही परम पावन हैं, वे ही मङ्गलमय हैं और वे ही परम सत्य हैं।

'जिस वाणी से भगवान् श्रीकृष्ण के परम पवित्र यश का गान होता है, वही परम रमणीय, रुचिकर एवं प्रतिक्षण नयी-नयी जान पड़ती है। उससे अनन्तकाल तक मन को परमानन्द की अनुभूति होती

रहती है। मनुष्यों का समस्त शोक, चाहे वह समुद्र के समान लम्बा और गहरा क्यों न हो, उस वाणी के प्रभाव से सदा के लिये सूख जाता है।

'जिस वाणी से जगत् को पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण के यश का कभी गान नहीं होता, वह कौओं के लिये उच्छिष्ट फेंकने के स्थान के समान अत्यन्त अपवित्र है। मानस-सरोवरनिवासी हंस अथवा ब्रह्मधाम में विहार करनेवाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्त उसका कभी सेवन नहीं करते। निर्मल हृदयवाले साधुजन तो वहीं निवास करते हैं, जहाँ भगवान् रहते हैं।'

भगवान् ने मनुष्य को जो जिह्वा दी है, वह खासकर भगवन्नामोच्चारण के लिये ही दी है। अतः जो मनुष्य भगवान् की दी हुई जिह्वा के द्वारा भगवन्नामोच्चारण करते हैं, वह मनुष्य अवश्य ही मोक्ष की सीढ़ियों पर आरूढ़ हो सकता है। जो मनुष्य भगवान् की दी हुई जिह्वा के द्वारा भगवन्नामोच्चारण नहीं करता, वह मोक्ष की सीढ़ियों पर आरूढ़ नहीं हो सकता। कहा भी है—

जिह्वां लब्ध्वापि यो विष्णुं कीर्तनीयं न कीर्तयेत्।
लब्ध्वापि मोक्षनिःश्रेणिं स नारोहति दुर्मतिः॥

'जो मनुष्य जिह्वा प्राप्त करके भी कीर्तनीय भगवान् विष्णु का कीर्तन (उच्चारण) नहीं करता, वह कुत्सित बुद्धिवाला मनुष्य मोक्ष की सीढ़ियों को पाकर भी उन पर चढ़ने में सर्वदा असमर्थ रहता है।'

अतः मनुष्य को अपनी जिह्वाद्वारा भगवन्नामोच्चारण कर मोक्ष की सीढ़ियों पर आरूढ़ होना चाहिये। भगवन्नामोच्चारणद्वारा मोक्ष की सीढ़ियों पर आरूढ़ होने से ही मनुष्य परम पद (मोक्ष) को प्राप्त कर सकता है।

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु याव-
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥

(श्रीमद्भागवत ११।९।२९)

'यह मानव-शरीर यद्यपि अनित्य और मृत्युग्रस्त है, तथापि इससे परम पुरुषार्थ की प्राप्ति हो सकती है। इसलिये अनेक जन्मों के बाद यह अत्यन्त दुर्लभ मानव-शरीर पाकर विचारशील मनुष्य को शीघ्रातिशीघ्र मृत्यु से पहले ही मोक्ष-प्राप्ति के लिये प्रयत्न कर लेना चाहिये। मानव-जीवन का मुख्य उद्देश्य मोक्ष-प्राप्ति ही है, विषय-भोग नहीं। विषय-भोग तो सभी योनियों में प्राप्त हो सकते हैं, जो कि मनुष्य के लिये सर्वथा त्याज्य हैं।'

समस्त योनियों में मनुष्य-योनि श्रेष्ठ कही गयी हैं। मनुष्य-योनि के श्रेष्ठ होने का कारण यह है कि इसी योनि के द्वारा 'मोक्ष' की प्राप्ति की जा सकती है, अन्य योनियों के द्वारा नहीं की जा सकती। अतः मनुष्य के लिये 'मोक्ष' की प्राप्ति बहुत ही श्रेष्ठ और आवश्यक वस्तु है। मोक्ष की प्राप्ति होने के अनन्तर मनुष्य सदा के लिये **'पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्'** के चक्कर से मुक्त हो जाता है। अतः मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति के लिये विशेष प्रयत्न करना चाहिये।

दुःख का विषय है कि जिस मोक्ष की प्राप्ति से मनुष्य बार-बार जीवन-मरण के चक्कर से छूट जाता है, उस मोक्ष की प्राप्ति के लिये वह प्रयत्न नहीं करता, किन्तु साधारण पशु-पक्षी की तरह आहार, निद्रा, भय, मैथुनादि अनित्य अलौकिक सुख-भोगों में ही आसक्त रहता है। ऐसे मनुष्य की तुलना उस व्यक्ति से की गयी है, जो अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये ऊपर की मञ्जिल में पहुँचकर, अज्ञानवश

पुनः अकस्मात् नीचे गिर जाता है। ऐसे मनुष्य के लिये ही भगवान् वेदव्यासजी ने कहा है—

'तमारूढच्युतं विदुः।' (श्रीमद्भागवत ११।७।७४)

अतः बुद्धिमान् मनुष्य को संसार-चक्र से छुटकारा पाने के लिये मोक्षप्राप्त्यर्थं सदा प्रयत्न करना चाहिये। मोक्ष-प्राप्ति के लिये भगवन्नाम से बढ़कर और कोई श्रेष्ठ सुलभ साधन नहीं है। इसलिये मनुष्य को मोक्ष-प्राप्ति के लिये सर्वदा भगवन्नामका उच्चारण करना चाहिये।

भगवन्नाम का उच्चारण वही मनुष्य कर सकता है, जिसका भगवान् में श्रद्धा और विश्वास हो। श्रद्धा और विश्वास के बिना मनुष्य भगवन्नाम का उच्चारण नहीं कर सकता। अतः भगवन्नाम के उच्चारणार्थं मनुष्य को भगवान् के प्रति श्रद्धा और विश्वास रखना चाहिये।

भगवान् के प्रति श्रद्धा और विश्वास का होना भी भगवत्कृपा पर ही निर्भर है। भगवत्कृपा के बिना मनुष्य भगवान् में श्रद्धा और विश्वास नहीं कर सकता। अतः स्पष्ट है कि भगवत्कृपा से ही मनुष्य भगवान् के प्रति श्रद्धा और विश्वास को प्राप्त कर भगवन्नाम का उच्चारण कर सकता है।

भगवन्नाम का उच्चारण मनुष्य जीवन के प्रारम्भ काल से ही होना चाहिये। जो मनुष्य अपने जीवन के प्रारम्भ काल से ही भगवन्नाम के उच्चारण का अभ्यास कर लेता है, वही अपनी मृत्यु के समय में भी भगवन्नाम का उच्चारण कर सकता है। जो मनुष्य अपने जीवन के प्रारम्भ काल में भगवन्नाम के उच्चारण का अभ्यास नहीं करता, उसके लिये मृत्यु के समय भगवन्नाम का उच्चारण करना बहुत ही कठिन है। अतः मनुष्य को अपने जीवन के प्रारम्भ काल से ही भगवन्नाम के उच्चारण करने का अभ्यास कर लेना चाहिये, जिससे वह अपनी मृत्यु के समय में भी भगवन्नाम का उच्चारण कर

सके। जो मनुष्य अपनें समस्त जीवन में श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवन्नाम का उच्चारण करता रहता है, वह निश्चित ही जीवन-मरण के चक्कर से छूटकर मुक्त हो जाता है। अतः मोक्षाभिलाषी को उठते, बैठते, सोते, जागते, चलते, फिरते आदि सभी अवस्थाओं में सर्वदा भगवन्नाम का उच्चारण करना चाहिये।

वेदादि सद्ग्रन्थों का तो यहाँ तक कहना है कि जिस मनुष्य नें प्रमादवश जीवनपर्यन्त कभी भी भगवन्नाम का उच्चारण नहीं किया, उसने भी भगवत्कृपा से मृत्यु के समय में भी विवश होकर यदि भगवन्नाम का उच्चारण कर लिया, तो उसके समस्त पापों का क्षय हो जाता है और वह निश्चित ही मुक्ति को प्राप्त होकर भगवत्सायुज्य प्राप्त करता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण अजामिल है, जिसनें मृत्यु के समय अपने पुत्र के व्याज से भगवान् का नाम लेकर परम पद को प्राप्त किया[1]।

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन्॥

(श्रीमद्भागवत ६।२।४९)

'अजामिल जैसे पापी ने मृत्यु के समय पुत्र के बहाने भगवान् के नाम का उच्चारण किया, जिसके फलस्वरूप उसे परमपद (वैकुण्ठ) की प्राप्ति हुई। फिर जो लोग श्रद्धा-भक्ति से सावधान होकर भगवन्नाम का उच्चारण करते हैं, उनकी भगवद्धाम की प्राप्ति में अर्थात् उनके मुक्त होने में तो सन्देह ही क्या है?'

प्राणत्याग के समय भगवन्नाम के उच्चारण और स्मरण करनें से मनुष्य 'मोक्ष' प्राप्त करता है, इस विषय का उल्लेख भागवत, गीता आदि शास्त्रों में बारम्बार किया गया है—

---

१ अजामिलोऽपि पापात्मा यन्नामोच्चारणादनु।
प्राप्तवान् परमं धाम तं वन्दे लोकसाक्षिणम्॥
(पद्मपुराण)

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि
नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा
संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥

(श्रीमद्भागवत ३।९।१५)

'जो मनुष्य प्राणत्याग के समय आपके (भगवान्‌के) अवतार, गुण और कर्मों को बतलानेवाले 'गोविन्द', 'वासुदेव', 'जनार्दन' आदि नामों का विवश होकर भी उच्चारण करते हैं, वे अनेकों जन्मों के पापों से तत्काल मुक्त होकर माया आदि के आवरणों से रहित होकर ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं। आप नित्य अजन्मा हैं, मैं आप की शरण स्वीकार करता हूँ।'

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः
पतन् स्खलन् वा विवशो गृणन् पुमान् ।
विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं
प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ॥

(श्रीमद्भागवत १२।३।४४)

'मनुष्य मरने के समय आतुर अवस्था में अथवा गिरते या फिसलते समय विवश होकर भीं यदि भगवान् के किसी एक नाम का उच्चारण कर ले, तो वह मनुष्य समस्त कर्मबन्धन से मुक्त होकर उत्तम गति को प्राप्त करता है। किन्तु फिर भी इस कलियुग में कलियुग से प्रभावित होकर प्राणी उस भगवान् की आराधना नहीं करते, यह बड़े दुःख की बात है।'

जाकर नाम मरत मुख आवा ।
अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा ॥

(रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड ३०।३)

'काष्ठ और पाषाण के सदृश म्रियमाण उस भक्त का मैं स्वयं स्मरण करता हूँ और उसको परमगति देता हूँ।'

और भी कहा है—

कफवातादिदोषेण मद्भक्तो न च मां स्मरेत्।
तस्य स्मराम्यहं नो चेत् कृतघ्नो नास्ति मत्परः॥

'मेरा भक्त यदि कफ-वातादि दोषों के कारण (मृत्युके समय) मेरा स्मरण करने में असमर्थ होता है, तो मैं स्वयं उसका स्मरण करता हूँ। यदि मैं अपने स्मरण करनेवाले भक्त को मृत्यु के समय भूल जाऊँ, तो मेरे से बढ़कर कोई कृतघ्न नहीं हो सकता।'

भगवान् की दयाशीलता और कृपाशीलता अवर्णनीय है। वे अपने भक्त की जिम्मेदारी जीवनपर्यन्त तक के लिये स्वयं वहन कर सदा उसका सर्वप्रकार से कल्याण करते हैं। अतः भगवद्भक्त मनुष्य अपने शरीर, वाणी, मन, बुद्धि, इन्द्रिय और आत्मा आदि सभी को भगवान् में समर्पित कर सर्वदा उनके नाम, लीला और स्वरूप का स्मरण और उच्चारण करना चाहिये।

अब हम उन सच्चिदानन्द भगवान् को प्रणाम करते हैं, जिनके स्मरणमात्र से मनुष्य के समस्त प्रकार के पाप तत्काल नष्ट हो जाते है—

प्रयाणे चाप्रयाणे च यन्नाम स्मरतां नृणाम्।
सद्यो नश्यन्ति पापौघा नमस्तस्मै चिदात्मने॥

(पद्मपुराण)

'मृत्युकाल में अथवा जीवनकाल में भगवान् का नामस्मरण करनेवाले मनुष्यों के सभी प्रकार के पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। उन चिदात्मा भगवान् कृष्ण को नमस्कार है।'

मृत्युके समय भगवत्स्मरण होनेके उपाय

मनुष्य की जैसी सङ्गति होती है, वैसा ही उसका स्वभाव बनता है। कुसङ्ग में रहनेवाले का स्वभाव दूसरे का अपकार करने का होता है, अतः कुसङ्ग से सर्वथा अलग रहना चाहिये। अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्य को सत्सङ्गति ही करना चाहिये। भगवान् व्यास जी ने भी कहा है—

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत् त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्॥

(मार्कण्डेयपुराण)

'सङ्गति न करना सबसे उत्तम है। यदि सङ्गति करनी ही हो, तो सज्जनों के साथ की जा सकती है, क्योंकि सज्जनों की सङ्गति भवरोग की एकमात्र औषध है।'

भगवद्भक्तों की सङ्गति करने से हमेशा भगवच्चर्चा मिलती रहती है। भगवान् के गुण और कार्य तथा उनके प्रभाव सुनते रहने से भगवान् में भक्ति बढ़ती है और मन में भक्ति का संस्कार होता है, जिससे अन्तिम समय में भगवान् की ही स्मृति होती है।

सन्त शिरोमणि श्री तुलसीदासजी ने रामचरित-मानस में सज्जनों की महिमा बतलायी है—

सत्सङ्गति मुद मङ्गल मूला।
सोइ फल सिद्धि सब साधन फूला॥

(रामचरितमानस, बालकाण्ड)

सज्जनों की सङ्गति सभी मङ्गलों की जड़ है अर्थात् सत्सङ्ग से ऐहिक और पारलौकिक सभी तरह के सुख प्राप्त होते हैं। दूसरे जितने मन्त्र जपना आदि साधन हैं, वे सब फल नहीं, फूल हैं, सत्सङ्ग प्राप्त होने के पूर्वरूप हैं। तुलसीदास जी के ही वचन हैं—

बिनु सत्सङ्ग बिवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥

(रामचरितमानस, बालकाण्ड)

सज्जनों की सङ्गति के विना सद्विचार उत्पन्न नहीं होते। भगवन्नाम-जप आदि के प्रभाव से सज्जनों की सङ्गति प्राप्त होती है। सत्सङ्गति को भी गोस्वामीजी ने भगवत्कृपा-साध्य ही कहा है।

महाकवि भवभूति ने भी अपने नाटक 'उत्तर रामचरित' में लिखा है—

सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति।

(उत्तररामचरित २।१)

अर्थात् सज्जनों को भी सत्पुरुष का समागम बहुत पुण्य के उदय होने से ही होता है। अतः मनुष्य को सदा सत्पुरुषों की सङ्गति करनी चाहिये और दुःसङ्ग का सदा त्याग करना चाहिये।

दिवंगत प्राणीके लिये श्राद्धादि कर्मोंका विधान क्यों है ?

मनुष्य जब जन्म लेता है, तब तीन ऋण अपने ऊपर लेकर आता है। अतः देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण-इन तीनों ऋणों से मुक्त होना मनुष्य का कर्त्तव्य है। प्रतिदिन भगवान् विष्णु के पूजन, हवन और पञ्चमहायज्ञ से देवऋण से मुक्ति मिलती है, सन्ध्या, तर्पण, सूर्यार्घ्य और वेदाध्ययन से ऋषिऋण से मुक्ति मिलती है और मरे हुए माता-पिता की अन्त्येष्टि, शवदाह और श्राद्धादि कर्म से पितृऋण से मुक्ति मिलती है। यदि माता-पिता का श्राद्ध न करें, तो पितृऋण से मुक्ति नहीं होती। जैसे लोक में ऋणी पुरुष को अनेकों यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं, वैसे ही श्राद्धादि कर्म न करनेवाले पुत्र-पौत्रादिकों को इहलोक और परलोक में अनेकानेक यातनाओं को भोगना पड़ता है। अतः श्राद्धादि-कर्मों के द्वारा ही पितृऋण से मुक्ति मिलती है।

'श्राद्धविवेक' में लिखा है—

न तत्र वीराः जायन्ते आरोग्यं न शतायुषः ।
न च श्रेयोऽधिगच्छन्ति यत्र श्राद्धं विवर्जितम् ॥

इसलिये अपने कुल के कल्याण के लिये भी श्राद्ध करना परमावश्यक है। यदि घर में अन्न और पैसे न हों, तो खेतों में स्वतः उत्पन्न हुए शाक को अच्छी तरह पकाकर उससे भी श्राद्ध कर लेना चाहिये। यथा—

तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैरपि यथाविधि ।
कुर्वीत श्रद्धया तस्य कुले कश्चिन्न सीदति ॥

(ब्रह्मपुराण)

श्राद्ध में मुख्य बात 'श्रद्धा' है। श्रद्धा से किये जाने पर पितृगण तृप्त हो जाते हैं। वस्तु बहु-मूल्य की है या अल्प मूल्य की, इसकी अपेक्षा पितृगण नहीं करते। श्रीमद्भागवत में भगवान् ने कहा है—

अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्यैव मे भवेत् ।
भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

(१०।८१।३-४)

अर्थात् भक्तों के द्वारा भक्तिपूर्वक अर्पित की गई स्वल्प वस्तु को भी मैं बहुत समझता हूँ, उससे मुझे बहुत सन्तोष होता है और अभक्तों के द्वारा बहुत भी दी गयी वस्तु से मेरी तुष्टि नहीं होती।

उसी तरह पितृगण भी शाकादि तुच्छ वस्तुओं से भी श्रद्धा के साथ देने पर तृप्त होते हैं और उन वस्तुओं को सहर्ष स्वीकार करते हैं। और वे प्रसन्न होकर श्राद्ध करनेवाले को पुत्र, पौत्र, कीर्ति, लक्ष्मी, आयु, आरोग्य आदि प्रदान करते हैं। मृत पुरुषों के उद्देश्य से जो

श्राद्ध, तर्पण नहीं करते, उनसे पितृगण सदा असन्तुष्ट रहते हैं और पुत्रादि को कोसते रहते हैं। क्योंकि श्राद्ध के बिना उन्हें भूख-प्यास की पीड़ा से कष्ट होता है। यथा—

नास्तिक्यादथवा लौल्यान्न तर्पयति वै सुतः।
पिबन्ति देहिनः स्रावं पितरोऽस्य जलार्थिनः॥

अर्थात् नास्तिकता से अथवा चञ्चलतावश भ्रान्तचित्त होकर जो अपने माता-पिता तथा पितामह आदि पितृगणों का तर्पण नहीं करते, उनके पितृगण देह से निकले हुए गर्म पसीने के अपवित्र जल को पीते हैं एवं अपने पुत्रादि को श्राद्ध, तर्पण करने योग्य रहने पर भी श्राद्ध-तर्पण से विमुख देखकर शाप द्वारा उनकी आयु, आरोग्य, धन-सम्पत्ति का विनाश कर देते हैं। श्रद्धा के साथ श्राद्धादि कर्म करने से दूसरे जन्म में मनुष्य को पूर्व जन्म की स्मृति होती है, इसकी कथा सभी पुराणों में पायी जाती है।

मोक्षदायिनी सात पुरियाँ

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चेति सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

(गरुडपुराण)

'अयोध्या भगवान् श्रीराम की जन्मभूमि, मथुरा भगवान् श्रीकृष्ण की जन्मस्थली, मायापुरी और काशी, काञ्ची, अवन्तिका और द्वारावती (द्वारिकापुरी)—ये सात मोक्षदायिनी पुरियाँ हैं।'

यह प्रसिद्ध है कि काशी में मरनेवाले को भगवान् शंकर तारक रामनाम मन्त्र का उपदेश देकर मुक्त कर देते हैं। शास्त्र में ऐसा भी लिखा है कि काशी में पापियों को यमदण्ड नहीं होता, परन्तु अधिक से अधिक छत्तीस वर्ष तक भैरव की यातना होती है, उसके पश्चात्

उसको मुक्ति हो जाती है। जो धर्मात्मा होता है, उसकी मुक्ति भगवान् शंकर 'राममन्त्र' का उपदेश करके तत्काल कर देते हैं। काञ्ची से 'विष्णुकाञ्ची' और 'शिवकाञ्ची' का ग्रहण होता है। इन नगरियों में विष्णु और शंकर का नित्य-निवास है। विष्णुकाञ्ची में भगवान् विष्णु के दर्शन और चरणामृत प्राप्त हो जाने से मुक्ति हो जाती है। यदि दुर्भाग्यवश चरणामृत न भी प्राप्त हो और भगवत्-दर्शन भी न हो, तो भी स्थान के प्रभाव से ही मुक्ति हो जाती है। अवन्तिका (उज्जैन) में भी भगवान् शंकर का निवासस्थान है, वहाँ भी भगवान् सदाशिव की कृपा से मुक्ति मिल जाती है। द्वारिकापुरी तो परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण की नित्य-निवासस्थली ही है। वहाँ पूर्व जन्म तथा वर्तमान जन्म में पुण्य न करनेवाले को मृत्यु प्राप्त करना ही असम्भव है। 'घुणाक्षर न्याय' से यदि मनुष्य वहां पहुँच गया, तो वहाँ जलवायु के स्पर्श से ही उसके पुण्य-पाप कर्म के फल धुल जाते हैं और वह मुक्त हो जाता है।

जो गुण भगवान् में हैं, वे ही गुण उनके आश्रितों में भी होते हैं। भगवान् के दर्शन से, नाम-स्मरण से, चरण-चिह्नित पृथ्वी के दर्शन से और भगवान् को अपने हृदय में धारण करनेवाले सन्तों के दर्शन और सेवा से वे ही फल प्राप्त होते हैं, जो भगवान् के दर्शन से प्राप्त होते हैं। श्रीमद्भागवत में यह कथा आती है कि जब महाराज भगीरथ ने गङ्गाजी से पृथ्वी पर आने की प्रार्थना की, तब गङ्गाजी ने कहा— 'मैं पृथ्वी पर नहीं जाऊँगी, क्योंकि वहाँ के रहनेवाले पापी मुझ में स्नान करके अपने पापों को धो देंगे, फिर मैं पाप-लिप्त हो जाऊँगी। फिर अपने में लगे हुए पापों को मैं कहाँ प्रक्षालित करूँगी।' यथा—

किं चाहं न भुवं यास्ये नरा मय्यामृजन्त्यघम्।
मृजामि तदघं कुत्र राजंस्तत्र विचिन्त्यताम्॥

(श्रीमद्भागवत ९।९।५)

इस पर महाराज भगीरथ ने कहा—'हे देवी! तुम इससे मत डरो।'

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः॥

(श्रीमद्भागवत ९।९।६)

'हे मातः! जिन्होंने लोक-परलोक, धन-सम्पत्ति और स्त्री-पुत्र की कामना का त्याग करके संसार से वैराग्य ले लिया है और अपने आप में शान्त हो रहे हैं, वे ब्रह्मनिष्ठ और लोकों को पवित्र करने-वाले परोपकारी सज्जन अपने अङ्ग-स्पर्श से तुम्हारे पापों को नष्ट कर देंगे। उनके हृदय में पापों को नाश करनेवाले परब्रह्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण निवास करते हैं।'

अतः भगवान् के जन्मस्थानों का यह माहात्म्य है कि उन स्थानों में मृत्यु प्राप्त करने से जागतिक आवागमनरूप बन्धन से मनुष्य मुक्त हो जाता है। अन्य तीर्थों का भी यही प्रभाव है, परन्तु अन्य तीर्थों में श्रद्धा के अनुसार फल-प्राप्ति होती है, अन्य तीर्थों में श्रद्धा न होने से पाप-फल भोगने के पश्चात् बहुत विलम्ब से मुक्ति प्राप्त होने की सम्भावना हैं।

गया श्राद्धका महत्त्व

यह पहले लिखा जा चुका है कि श्रद्धापूर्वक पितरों के निमित्त जो किया जाय, उसको 'श्राद्ध' कहते हैं। श्रद्धा न रहने से किया हुआ कर्म निष्फल होता है। गीता कहती है—

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥

(भगवद्गीता १७।२८)

श्रद्धा और विश्वास के बिना किये गये कर्म दान, यज्ञ, तपस्या आदि सभी 'असत्कर्म' कहे जाते हैं। उनसे न इस लोक मे कुछ आशा की जा सकती है और न परलोक में ही। किसी भी कर्म की फल-प्राप्ति में हमारी श्रद्धा का ही विशेष महत्त्व है।

इस वैज्ञानिक युग में शास्त्रों के वचनों पर विश्वास नहीं होता, क्योंकि जिन कर्मों का फल प्रत्यक्ष देखा नहीं जाता, उनपर विश्वास नहीं होना। किन्तु यह समझ लेना चाहिये कि जैसे बीज खेत में बो देने के बाद तत्काल उसका फल नहीं मिलता—बीज अङ्कुरित होता है, बढ़ता है, उसमें फूल लगते हैं, तभी फल मिलता है। साथ ही जब पकने का समय आता है, तभी वह फल मिलता है और हम उसका रसास्वादन करते हैं। इस पाप-पुण्यकर्मरूपी बीज को इस शरीररूपी क्षेत्र में बो दिया जाता है। समय आने पर कटु और मीठा फल इससे अवश्य प्राप्त होता है। वाल्मीकीय रामायण में सीताजी की उक्ति है—

न हि सद्यो नरव्याघ्र दृश्यते कर्मणः फलम्।
कालोऽप्यङ्गी भवत्यत्र शस्यनामभिपक्तये ॥

कर्मों का फल तत्काल नहीं प्राप्त होता, क्योंकि फलप्राप्ति में समय भी हेतु होता है। धान्यादि के पकने में समय ही प्रधान होता है। बिना समय आये धान आदि पौधे नही पकते। पुण्य और पाप के फल प्राप्त होने में समय भी अपेक्षित है। तत्काल फल-प्राप्ति न होने से जो आधुनिक वैज्ञानिकों को श्राद्धादि कर्मों के प्रति अविश्वास होता है, वह अज्ञान है। शास्त्रों में दयालु ऋषियों ने इस दुःखमय संसार में आने-जाने के कष्ट से मुक्त होने के अनेकों उपाय शास्त्रों में लिखे हैं। पहले तो निष्काम-भाव से अपने वर्णाश्रम के अनुसार विहित कर्मों को करना तथा भगवान् के प्रीत्यर्थ यज्ञादि का अनुष्ठान और भगवान् के जपादि को मुक्ति का उपाय बतलाया है। 'यदि

स्वयं इन कर्मों को न कर सका, तो गृहस्थाश्रमी पुत्र उत्पन्न करता है और उसपर अपनी मुक्ति का भार सौंप देता है। इसलिये गृहस्थाश्रमीं पुत्रप्राप्ति की कामना करता है। वायुपुराणान्तर्गत वाराहकल्प के गयामाहात्म्य में लिखा है—

> काङ्क्षन्ति पितरः पुत्रान् नरकाद् भयभीरवः।
> गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति॥
> गयाप्राप्तं सुतं दृष्ट्वा पितृणामुत्सवो भवेत्।
> पद्भ्यामपि जलं स्पृष्ट्वा सोऽस्मभ्यं किं न दास्यति॥
> एष्टव्या बहवः पुत्राः यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्।
> यजेद् वा अश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्॥

(गयामाहात्म्य, वाराहकल्प ७।८।९)

इस संसार में सत्कर्म न करने के कारण पितृगण नरक के भय से डरने के कारण पुत्रों की इच्छा करते हैं। वे सोचते हैं कि गयाश्राद्ध करके कोई पुत्र ही मुझे नारकीय यातना से बचा सकता है। अपने पुत्र को गया में पहुँचे देखकर सभी पितृगण अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और उत्सव मनाते हैं। वे समझते हैं कि श्राद्ध, तर्पण न करके यदि पैर से भी स्पर्श करके जल दे देगा, तो मेरा उद्धार हो जायगा। इसलिये गृहस्थ को बहुत पुत्र प्राप्त करने की इच्छा रखनी चाहिये। उन बहुत पुत्रों में से एक भी पुत्र यदि गया जाकर श्राद्ध कर देगा, तो उद्धार हो जायगा। अश्वमेध यज्ञ अथवा श्राद्ध में नीले रंग के वृषभ का उत्सर्ग भी पितरों की मुक्ति के लिये पुत्र ही कर सकता है।

गयामाहात्म्य में तो यहाँ तक लिखा है कि पाँच महापातकों में लिप्त पुरुष की भी मुक्ति गयाश्राद्ध से हो जाती है। यथा—

> पिण्डं दद्याच्च पित्रादेरात्मनोऽपि तिलैर्विना।
> ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः॥

पापं तत्संर्गजं सर्वं गयाश्राद्धाद् विनश्यति ।
आत्मजोऽप्यन्यजो वापि गयाभूमौ यदा तदा ॥

गया में अपने पितरों के उद्देश्य से तथा अपने लिये भी अपनी जीवितावस्था में ही बिना तिल के ही पिण्डदान किये जाने पर ब्रह्महत्या, मद्यपान, चोरी और गुरुपत्नी के साथ व्यभिचार करना आदि महापातकों से भी निवृत्ति हो जाती है। यद्यपि शास्त्र का सिद्धान्त है कि **'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'**, तथापि गयाश्राद्ध की ऐसी महिमा है कि बिना ज्ञान के भी गयाश्राद्ध से मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है। गया-तीर्थ में मृत्यु-प्राप्त करने की भी वैसी ही महिमा बतलायी गयी है। यथा—

प्रमादान्म्रियते क्षेत्रे ब्रह्मादेर्मुक्तिदायके ।
ब्रह्मज्ञानाद् यथा मुक्तिं लभते नात्र संशयः ॥

ब्रह्मा आदि देवताओं को मुक्ति देनेवाले गयाक्षेत्र में अनजान में भूल से भी मृत्यु-प्राप्त करनेवाले को वैसी ही मुक्ति प्राप्त होती है, जैसी मुक्ति ब्रह्मज्ञान-प्राप्त होने पर मिलती है। यों तो गया में श्राद्ध पितरों की मुक्ति के निमित्त किसी समय भी किया जा सकता है, फिर भी इस सम्बन्ध में समय का विधान है। जैसे सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण के समय का श्राद्ध विशेष रूप से फलदायक होता है।

मीने मेषे स्थिते सूर्ये कन्यायां कार्मुके घटे ।
दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयायां पिण्डपातनम् ॥

'मीन की संक्रान्ति, मेष की संक्रान्ति, कन्या की संक्रान्ति एवं धन और कुम्भ की संक्रान्ति के समय गया में पिण्डदान प्राप्त करना दुर्लभ है। चन्द्रग्रहण आदि के समय गयाश्राद्ध करने से जो फल प्राप्त होता है, वह तीन लोकों में कहीं प्राप्य नहीं है।'

एक विद्वान् ने श्रीमद्भागवतान्तर्गत धुन्धुकारी की कथा का उल्लेख करते हुए मुझसे शङ्का की थी कि 'जब महापातकियों तक की गयाश्राद्ध करने से मुक्ति हो जाती है, तब धुन्धुकारी की क्यों नहीं हुई ? धुन्धुकारी ने गोकर्णजी से स्वयं ऐसा कहा है—

गयाश्राद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति ।
उपायमपरं किञ्चित् त्वं विचारय साम्प्रतम् ॥

(श्रीमद्भागवत माहात्म्य ५।३३)

सैकड़ों गयाश्राद्ध करने पर भी मेरी मुक्ति नहीं होगी, इसलिये अब तुम किसी दूसरे उपाय को सोचो। ऐसा क्यों ?' इसका उत्तर बिलकुल सामान्य है। अत्याचारी, वेश्यागामी और अपने माता-पिता की हत्या करनेवाले धुन्धुकारी को वेश्याओं ने मार दिया था और उसकी अन्त्येष्टि क्रिया एवं श्राद्धादि कर्म भी नहीं किये गये थे, जिस कारण उसे 'पितृलोक' की भी प्राप्ति नहीं हुई थी, जिससे वह 'प्रेतयोनि' में ही भटक रहा था। गोकर्ण ने जब अपने पितरों के कल्याणार्थ गया में श्राद्ध किया था, तब उसे मालूम भी नहीं था कि मेरे भाई धुन्धुकारी की मृत्यु हो गयी है और महापातकी होने के कारण वह प्रेतयोनि में गया है। गोकर्ण ने मुख्यतः अपने माता-पिता की सद्गति के लिये ही गयाश्राद्ध किया था। प्रसङ्गतः अन्य सम्बन्धियों के लिये भी पिण्डदान का श्राद्धकर्म में विधान है और गोकर्ण ने किया भी था, जिसका मुख्य रूप से यह प्रभाव दृष्टिगोचर होता है कि प्रेतयोनि में भी धुन्धुकारी को सद्बुद्धि हुई और अवसर पाकर उसने गोकर्ण को श्रीमद्भागवत का सप्ताह सुनाने को आदेश किया, जिससे पीछे उसकी मुक्ति हुई। सप्ताह-श्रवण में श्रद्धा और विश्वास उसे गयाश्राद्ध के फलस्वरूप ही प्राप्त हुए थे, इसलिये गयाश्राद्ध की महिमा की पुष्टि धुन्धुकारी की मुक्ति से भी प्रमाणित होती है।

श्रीमद्भागवत के श्लोक में **'श्राद्धशतेन'** का तात्पर्य है कि मैं ऐसा

पातकी हूँ कि मेरे उद्धार के लिये गयाश्राद्ध पर्याप्त नहीं है। जैसे रोगी अतिशय कष्ट में आने पर कह देता है कि सैकड़ों डाक्टर मुझे रोगमुक्त नहीं कर सकते, वैसे ही धुन्धुकारी भी अपने विगत जीवन के पाप-कर्मों को स्मरण कर आतुरतावश ऐसा कह रहा था।

सन् १९७३ ई० की सुविख्यात आश्चर्यजनक एक घटना का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है। पितृपक्ष में मध्यप्रदेश के एक सज्जन अपने साथ एक सर्प को लेकर गयाश्राद्ध करने आये थे। उन सज्जन के पिता की मृत्यु सर्पदंश से हुई थी। मृत्यु के कुछ दिनों बाद उनके पुत्र को जो श्राद्ध करने आये थे, स्वप्न हुआ, जिसमें उनके पिताजी ने उनसे कहा था कि 'मेरा जन्म सर्पयोनि में हुआ है और मैं इसी घर में रहता हूँ। तुमलोग मुझसे डरना नहीं। मैं किसी को डँसूगा नहीं। तुमलोग मेरा गयाश्राद्ध करो, जिससे इस सर्पयोनि से मेरी मुक्ति हो जाय।' वह सर्प अपने पुत्र, पौत्रों के पास जाता था, किन्तु किसी को डँसता नहीं था! पितृपक्ष में वे सज्जन जब गयाश्राद्ध करने के लिये तैयार हुए, तब उन्होंने सर्प से कहा—'मैं आपके निमित्त गयाश्राद्ध करने जा रहा हूँ और आप इस झोले में आ जाइये। मैं आपको अपने साथ गया लेता चलूँगा।' सर्प झोले में आ गया। गाड़ी में सर्प के साथ यात्रा करने के लिये अनुमति ले ली गयी थी। अपने साथ सर्प के लिये भी उन्होंने टिकट खरीदी और गया आ गये। गया के मजिस्ट्रेट को इसकी सूचना दे दी गयी कि 'विष्णुपद के मन्दिर में पिण्डदान के समय सर्प की रक्षा की जाय।' मजिस्ट्रेट को आश्चर्य हुआ और साथ ही कुतूहल भी। उन्होंने सर्प की रक्षार्थ पूरी व्यवस्था की। श्राद्धकर्त्ता ने फल्गु नदी में ले जाकर सर्प का झोला खोल दिया। सर्प बाहर निकला, उसने फल्गु के जल में स्नान किया और फिर चलते-चलते विष्णुपद मन्दिर में आकर भगवान् का चरणस्पर्श किया। उसने वहीं स्थिर बैठकर अपने पुत्र के द्वारा दिया गया पिण्डदान ग्रहण किया और पण्डों के द्वारा दिया

गया भगवान् का चरणामृत भी पान किया। पश्चात् शीघ्र ही उस सर्प का शरीर छूट गया। इससे यह प्रतीत होता है कि उसकी सद्गति हो गयी।

इस प्रकार की अनेक सत्य घटनाओं के आधार पर परलोक और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों पर मनुष्यों को विश्वास करना ही चाहिये। शास्त्रों में जो श्राद्धादि का विधान दिव्य दृष्टिवाले ऋषियों ने लिखा है, वह सत्य है। श्राद्धकर्म के मन्त्रों में निश्चय ही वह शक्ति है, जिससे अभीष्ट फल की सिद्धि होतीं है।

श्राद्धकर्म में 'संकल्प' प्रधान है। इस लोक में जिस प्रकार किसी व्यक्ति के पास कोई वस्तु भेजने के लिये ठीक-ठीक पता-ठिकाना लिखना आवश्यक होता है, उसी प्रकार मृत प्राणी के गोत्र, नाम और सम्बन्ध का ठीक-ठीक उल्लेख संकल्प में होना चाहिये। यद्यपि स्थूल दृष्टि से देखने पर पिण्ड और दान की सारी सामग्रियाँ यहीं रखी रह जाती हैं, उन्हें ब्राह्मण ले लेते हैं अथवा जल में प्रवाहित कर दी जाती हैं, तथापि इससे पितृलोक में पितरों की तृप्ति होती है, अतः इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये।

प्राणियों का आतिवाहिक शरीर वायु-प्रधान होता है, इसलिये प्रेतत्व की अवस्था में दान की गयी वस्तुओं की गन्ध से प्राणियों को तृप्ति मिलती है। पुनः पितृलोक और देवलोक में जहाँ प्राणियों का भोग-शरीर होता है, वहाँ उन्हें सुख-दुःखादि का भी भोग होता रहता है। उन्हें भौतिक वस्तुओं को ग्रहण करने की शक्ति नहीं होती, किन्तु उनसे होनेवाले सुख या दुःख का अनुभव होता है।

शरीर नश्वर है, किन्तु आत्मा अमर है। इसलिये भौतिक शरीर नष्ट हो जाने पर भी पुनर्जन्म ग्रहण करने के पूर्वतक कर्मानुसार उसे दूसरे शरीर में रहना पड़ता है। उसे जन्म ग्रहण करने के बाद पूर्व जन्म की स्मृति नहीं रहती। क्योंकि माया अथवा अज्ञान से भौतिक जगत् में ज्ञान आच्छादित हो जाता है।

'अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ।'

(गीता ५।१५)

पूर्व जन्म में किये गये उपकार, अपकार, द्वेष, सौहार्द्र आदि पर-जन्म में स्वरूपतः स्मृतिपथ में नहीं आते, परन्तु संस्कार-रूप से वह प्राणी में रहते हैं, जिनसे उसका जीवन प्रभावित होता है। यही कारण है जिससे किसी व्यक्ति को देखने पर प्रसन्नता होती है और किसी के दर्शनमात्र से ही मन में क्षोभ और द्वेष की भावना जागृत होती है। महाकवि भारवि ने अपने काव्य किरातार्जुनीय में लिखा है—

'विमली कलुषीभवच्चेतः कथयत्येव हितैषिणं रिपुं वा ।'

अर्थात् जिसे देखने से मन में प्रसन्नता होती है, वह हितैषी है और जिसे देखने से मन में कलुषता जागृत होती है, वह शत्रु है।

पाश्चात्य विद्या के प्रभाव से अथवा युग की महिमा के अनुसार आज लोग भ्रान्तमति हो रहे हैं। ईश्वर के अस्तित्व और शास्त्रीय विधान पर से लोगों का विश्वास हटता जा रहा है। निश्चय ही दयनीय अवस्था है। ऐसे व्यक्ति अपना भविष्य तो अन्धकारमय बनाते ही हैं और वे अपने पितरों को भी श्राद्धादि कर्मों से वञ्चित रखकर दुःखी बनाते हैं। जिस तरह सरकारी नियमों के उल्लङ्घन करने से हम सरकार के द्वारा दण्डित होते हैं, वैसे ही ईश्वरीय विधान जो शास्त्रों के रूप में हैं, उनका उल्लङ्घन करके भी हम दण्डनीय होते हैं।

योगभ्रष्टके पूर्व जन्मका स्वरूप

'युज् समाधौ' और 'युजिरयोगे' इन दोनों धातुओं से ही 'घञ्' प्रत्यय करने पर 'योग' शब्द बनता है। पातञ्जल योगसूत्र के अनुसार **"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"** के द्वारा योग की परिभाषा कही गयी है। चित्त की निम्न गति होने के कारण सांसारिक विषयों की ओर इसका आकर्षण स्वाभाविक ढङ्ग से होता है। इसे विषयों की ओर से रोककर भगवान् की ओर प्रवृत्त करना ही 'योग' कहलाता है। महर्षि पतञ्जलि ने इसके लिये दो उपाय बतलाये हैं—**"अभ्यास-**

वैराग्याभ्यां तन्निरोधः" चित्त जब-जब विषयों की ओर जाय, तब-तब इसे वहाँ से हटाकर ईश्वर के स्वरूप में स्थापित करना चाहिये। यही 'अभ्यास' कहा जाता है। सांसारिक विषयों की असारता को समझते हुए उनमें दोष-दृष्टि से उनसे उपरामता आ जाती है और यही **'वैराग्य'** कहा जाता है।

चित्त की वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं, जिनमें कुछ क्लिष्ट हैं और कुछ अक्लिष्ट। यथा—

"वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टा अक्लिष्टाश्च" इन पाँच वृत्तियों से मन को हटा देने पर मन की वृत्ति शान्त हो जाती हैं और चित्त स्थिर हो जाता है। योगभ्रष्ट पुरुष की पूर्व जन्म में साधक की अवस्था होती है। पूर्व जन्म में सात्त्विक प्रवृत्तियोंवाला होने के कारण वह जीवन भर अष्टाङ्ग योग की साधना करते रहने पर भी यदि साधना पूरी नहीं कर पाता और इस शरीर का यदि विनाश हो जाता है, तो वह अपने संस्कार को लिये हुए किसी योगी के कुल में जन्म ग्रहण करता है, जहाँ उसे उपयुक्त परिवेश प्राप्त होता है और वह अपनी साधना पूरी करने में समर्थ होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् के वचन हैं—

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति॥
प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन॥

(गीता ६।४०-४३)

अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण से ऐहिक सुख की कामनावाले और विषयों से उपराम भगवत्प्राप्तिरूप मुक्ति की वासना रखनेवाले दो साधकों के विषय में भगवान् से पूछा था। इसके उत्तर में भगवान् ने कहा—

हे कुन्तिनन्दन ! जो एक बार योग-साधन में लग गया है, उसका विनाश न इस लोक में होता है और न परलोक में ही। जो आत्मा के कल्याण अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति में प्रवृत्त हो जाता है, उसकी दुर्गति नहीं होती। वह निम्न योनि में कभी जन्म नहीं ग्रहण करता। निम्न योनि की प्राप्ति तामस कार्य की वासना से होती है। ब्रह्म-प्राप्ति के लिये योग-साधन में लगे हुए पुरुष की वासना आत्म-कल्याण में होती है। अतः वह पुण्य कर्म करनेवाले मनुष्यों की गति-स्वरूप स्वर्गादि लोक की प्राप्ति करता है। वहाँ पूरी अवधि तक सुखभोग करने के पश्चात् वह पुनः मर्त्यलोक में मनुष्य होकर ही जन्म पाता है। आत्मकल्याण का कार्य अधूरा रह जाने के कारण उसे किसी ऐसे धनवान् कुल में जन्म प्राप्त होता है, जहाँ उसे ऐहिक सुख की सामग्रियों का अभाव नहीं होता। ऐहिक सुख की वासना न रखकर जो व्यक्ति परमार्थ-साधन की कामनावाले होते हैं, उनका योगियों के कुल में ही जन्म होता है, जहाँ शेष साधन को सम्पन्न करने के लिये सारी सुविधाएँ उन्हें प्राप्त होती हैं। ऐसे कुल में जन्म पाना भी बड़ा दुर्लभ होता है और पूर्व जन्म की साधना के अभाव में तो ऐसा जन्म असम्भव है। इस योगी-कुल में जन्म लेकर वह—

प्रयत्नाद् यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्॥ (गी. ६।४५)

परब्रह्म की प्राप्ति के लिये प्रयत्नपूर्वक लगा रहकर मनुष्य समग्र किल्विष से मुक्त हो जाता है। उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है और तब उसे परम गति की प्राप्ति होती है। तात्पर्य यह है कि पूर्व जन्म का संस्कार पर-जन्म में प्राप्त होता है। महाकवि कालिदास ने भी 'कुमारसम्भव' में लिखा है—

'सती च योषित् प्रकृतिश्च निश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि ।'

अर्थात् पतिव्रता पत्नी और निश्चल प्रकृति या स्वभाव दूसरे जन्म में भी पुरुष को प्राप्त होती है अर्थात् मनुष्य की प्रकृति सात्त्विक होने से दूसरे जन्म में प्रकृति सात्त्विक होती है, राजसिक होने से राजसिक और तामसिक होने से तामसिक होती है। शास्त्रों में भी लिखा है—

पूर्वजन्मनि या नारी पूर्वजन्मनि यः प्रियः ।
पूर्वजन्मनि या विद्या अग्रे अग्रे प्रधावति ॥

इसका तात्पर्य यही है कि पूर्व जन्म को पतिव्रता स्त्री, पूर्व जन्म का प्रिय मनुष्य और पूर्व जन्म की पठित विद्या पर-जन्म में भी प्राप्त होती है। मृत्यु के समय अपनी अभीष्ट वस्तु के चिन्तन के फलस्वरूप पर-जन्म में भी उसे उस वस्तु की प्राप्ति हो जाती है।

सूर्यके दक्षिणायन और उत्तरायणमें मृत्युका रहस्य

पौराणिक मत से सूर्य १२ महीनों में पृथिवी की परिक्रमा करते हैं, जिसमें छः महीने वे उत्तर की ओर से घूमते हैं और छः महीने वे दक्षिण की ओर से घूमते हैं। इसी की संज्ञा उत्तरायण और दक्षिणायन सूर्य से की गयी है। मकर की संक्रान्ति अर्थात् जब सूर्य मकर राशि पर जाते हैं, तब वे उत्तरायण होते हैं और जब सूर्य कर्क राशि पर जाते हैं, तब वे दक्षिणायन होते हैं।

उत्तरायण सूर्य में सूर्य की किरणें प्रखर होती हैं और दक्षिणायन में उनकी किरणें मन्द पड़ जाती हैं। मृत्यु के बाद प्राणी को तत्काल आतिवाहिक शरीर की प्राप्ति हो जाती है और वह वायु-प्रधान शरीर होता है। उत्तरायण सूर्य में सूर्य की किरणों की सहायता से वायु सुगमतापूर्वक देवलोक तक पहुँच जाती है। वायु में जलीय अंश कम होने के कारण वायु हलकी होती है और देवलोक तक उसका ऊर्ध्वगमन सम्भव होता है। ऐसे समय में मृत्यु-प्राप्त महात्मागण

शीघ्र ही देवलोक तक पहुँच जाते हैं। दक्षिणायन सूर्य में चन्द्रमा की किरणों के द्वारा वायु में जलीय अंश अधिक रहता है, जिससे उसका भार अधिक हो ज़ाता है और वह चन्द्रलोक तक ही पहुँच पाती है। छान्दोग्योपनिषद् (८।६।५) में लिखा है—

"अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेव रश्मिभिरूर्ध्व-माक्रमते स ओमिति वा होद्वामीयते स यावत्क्षिप्येन्मनस्ताव-दादित्यं गच्छत्येतद्वै लोकद्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधोऽवि-दुषाम् ॥"

अर्थात् जिस समय यह इस शरीर से उत्क्रमण करता है, वह 'ॐ' ऐसा कहकर आत्मा का ध्यान करता है और वह ऊर्ध्व लोक को जाता है। जितनी देर में मन वहाँ पहुँच सकता है, उतनी ही देर में वह 'आदित्यलोक' में पहुँच जाता है। अतः आदित्य ही उस देवलोक का द्वार है। ज्ञानी और भक्त पुरुष ही उस मार्ग से जा सकते हैं। अज्ञानियों और संसारासक्त पुरुषों के लिये वह रुकावट की जगह है। इसी को गीता में शुक्ल गति और कृष्ण गति नाम से उल्लेख किया गया है।

सूर्य की दक्षिणायन अवस्था में मृत्यु-प्राप्त व्यक्ति की गति 'चन्द्रलोक' तक ही होती है। इसी चन्द्रलोक को 'पितृलोक' कहा गया है, जहाँ सांसारिक विषयासक्त पुरुष मृत्यु के बाद जाते हैं। गीता के अनुसार शुक्ल गतिवाले व्यक्ति आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं और कृष्ण गतिवाले पुनर्जन्म प्राप्त करते हैं। ब्रह्मज्ञानी महात्माओं की शुक्ल गति होती है और वे ब्रह्मलीन हो जाते हैं तथा अन्य इस मर्त्यलोक में पुनः जीवन धारण करते हैं। प्रकारान्तर से गीता (१४।१८) इसी का उल्लेख करती है। जैसे—गीता सत्त्व, रज और तम-इन तीनों गुणों के अनुसार भी मनुष्य की ऊर्ध्व गति में अन्तर मानती है—

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥

अर्थात् सतोगुणी सात्त्विक व्यक्ति ऊर्ध्व गति प्राप्त करते हैं, रजोगुणी मध्य स्थिति (मर्त्यलोक) को प्राप्त करते हैं और तमोगुणी अधःपतित होकर अधम योनियों में भटकते रहते हैं। उपर्युक्त विवेचन-द्वारा इस प्रबन्ध में दक्षिणायन और उत्तरायण सूर्य में मृत्यु का विचार किया गया, किन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि धर्मात्मा पुरुष भी दक्षिणायन सूर्य में मृत्यु प्राप्त कर नरकगामी होगा अथवा पापात्मा उत्तरायण सूर्य में मृत्यु प्राप्त कर ब्रह्मलीन हो जायगा।

सात्त्विक गुणवाले धर्मात्मा की मृत्यु यदि अकस्मात् दक्षिणायन सूर्य में हो जाती है, तो उसकी आत्मा दक्षिणायन और कृष्ण पक्ष के अभिमानी देवता के पास रहती है तथा शीघ्र ही उत्तरायण सूर्य होने पर उत्तरायण शुक्ल पक्ष के अभिमानी देवता के पास उसे पहुँचा दिया जाता है और इसी तरह पापात्मा की आत्मा भी उत्तरायण सूर्य में जब शरीर से अलग होती है, तब उसे उत्तरायण के अभिमानी देवता अपने पास रखते हैं। जब सूर्य दक्षिणायन होते हैं, तब उसकी भी आत्मा उसके अधिकारी के पास पहुँचा दी जाती है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है—

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ (गी. ८।२३)

'हे अर्जुन ! जिस काल में शरीर त्यागकर गये हुए योगीजन लौटकर पुनर्जन्म के बन्धन में नहीं पड़ते और जिस काल में पुनर्जन्म के चक्कर में पड़ते हैं, उन दोनों कालों के स्वरूप को मैं तुम्हें बतलाता हूँ।'

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ (गी. ८।२४)

'जिस मार्ग में ज्योतिर्मय अग्नि अभिमानी देवता है, दिन का अभिमानी देवता है, शुक्ल पक्ष का अभिमानी देवता है और उत्तरायण

के छः महीनों का अभिमानी देवता है, उस मार्ग में मरकर गये हुए ब्रह्मवेत्ता योगीजन, उपर्युक्त देवताओं द्वारा क्रम से ले जाये जाकर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।'

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥ (गी. ८।२५)

'जिस मार्ग में धूमाभिमानी देवता है और रात्रि-अभिमानी देवता है तथा कृष्ण पक्ष का अभिमानी देवता है और दक्षिणायन के छः महीनों का अभिमानी देवता है, उस मार्ग में मरकर गया हुआ सकाम कर्म करनेवाला योगी उपर्युक्त देवताओंद्वारा क्रम से ले गया हुआ चन्द्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर, स्वर्ग में अपने शुभ कर्मों का फल भोगकर वापस आता है।'

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥ (गी. ८।२६)

'क्योंकि जगत् के ये दो प्रकार के शुक्ल और कृष्ण अर्थात् देवयान और पितृयान मार्ग सनातन माने गये हैं। इनमें एक के द्वारा गया हुआ जिससे वापस नहीं लौटना पड़ता, उस परम गति को प्राप्त होता है और दूसरे के द्वारा गया हुआ वापस आता है अर्थात् जन्म-मृत्यु को प्राप्त होता है।'

'नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।' (गी. ८।२७)

'हे पार्थ ! इस प्रकार इन दोनों मार्गों को तत्त्व से जानकर कोई भी योगी मोहित नहीं होता है।'

भगवान् ने मुक्त पुरुषों और अमुक्त पुरुषों की मृत्यु का उचित समय उपर्युक्त श्लोक में बतलाया है। योगी मुक्त-पुरुष हैं, उनका शरीर-त्याग उनकी इच्छा के अनुसार होता है।

भगवान् शङ्कराचार्य के मत से अग्नि और ज्योति ये दोनों ही श्रुति के अनुसार कालाभिमानी देवता हैं। योगी लोग उस मार्ग से

जाकर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं, जिस रास्ते में अग्नि और ज्योति देवता हैं। गीता (८।२४) की टीका में भगवान् शङ्कराचार्य ने लिखा है—

"न हि सद्योमुक्तिभाजां सम्यग्दर्शननिष्ठानां गतिः आगतिर्वा क्वचिद्भवति'

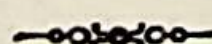
'जो प्राणी पूर्ण आत्मज्ञाननिष्ठ एवं सद्योमुक्ति के पात्र हैं अर्थात् तत्काल मुक्त होने के योग्य हैं, उनका इस लोक में कभी भी आना जाना नहीं होता है।'

श्रुति भी कहती है—

"न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति" अर्थात् ब्रह्म प्राप्तिवाले के प्राण उत्क्रमण नहीं करते, ब्रह्ममय हो जाते हैं।

धूम और रात्रि ये दोनों कृष्ण वर्ण हैं और इनके मार्ग से जानेवाले प्राणी की पुनरावृत्ति होती है अर्थात् वे पुनः पृथिवी पर अवतीर्ण होते हैं।

तात्पर्य यह है कि देवलोक का मार्ग प्रकाशमय और प्रशस्त है तथा पितृलोक का मार्ग अन्धकारमय और कष्टों से भरा हुआ है। उत्तरायण में मृत्युवाले प्रकाशमय पथ का अवलम्बन कर सुखते हैं और दक्षिणायन में मृत्युवाले अन्धकारमय मार्ग का अवलम्बन कर कष्ट भोगते हुए जाते हैं। एक की सद्गति होती है और दूसरे की असद्गति। इन विषयों पर लोगों को विश्वास करना चाहिये। शास्त्रीय प्रमाणों पर यदि किसी को विश्वास नहीं होता, तो यह दुर्भाग्य की बात ही कही जायगी। परलोक और पुनर्जन्म वैज्ञानिक प्रयोगशाला की वस्तु नहीं हैं और न कोई भुक्तभोगी इस संसार में अपने अनुभव को लोगों के सामने रख सकता है। इसलिये शास्त्र ही एकमात्र प्रमाण हैं, जिन पर विश्वास किया जाना चाहिये। यह निश्चित है कि शास्त्रों के अनुसार आचरण करने पर सुख-समृद्धि और परम आनन्द के रूप में अपने कर्मफल का भोग मनुष्य करता है, किन्तु प्रथम तो उसे विश्वास कर तदनुसार कर्म करना ही पड़ता है।



परिशिष्ट

लेखक

याज्ञिकसम्राट्

वेणीराम गौड वेदाचार्य

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

परिशिष्ट—१

वेदादि सद्ग्रन्थोंमें पुनर्जन्म

भगवान् ने मनुष्य के जीवन और मरण की परिस्थिति के विषय में कहा है—

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥

(गीता २।१२)

'मैं पहले किसी काल में नहीं था, यह बात नहीं है और तुम नहीं थे, ऐसी बात भी नहीं है। अथवा यह राजालोग पहले नहीं थे, यह बात भी नहीं है और यह भी नहीं है कि हम सभी लोग भविष्य में भी नहीं रहेंगे।'

भगवान् कृष्ण का यह कथन पुनर्जन्म-परम्परा को स्पष्ट सिद्ध कर रहा है। अत: भगवान् कृष्ण के कथनानुसार स्पष्ट है कि जीव पूर्व काल में भी असंख्य बार उत्पन्न हुआ है, वर्तमान समय में भी असंख्य बार उत्पन्न हो रहा है और भविष्य में भी असंख्य बार उत्पन्न होगा।

भगवान् ने गीता में अनेक बार अर्जुन को प्राणी के जीवन-मरण की वास्तविक स्थिति से अवगत कराया है, जिससे पुनर्जन्म स्पष्ट सिद्ध होता है।

भगवान् ने गीता में जिन श्लोकों में पुनर्जन्म की चर्चा की है, उन श्लोकों की अध्याय संख्या और श्लोक संख्या नीचे दी जा रही है। देखिये गीता—अ० २।१३, २।२२, २।२७, ४।६, ५।५, ७।१६, ७।४५, ८।५, ८।६, ८।१५, ८।१६, ९।१६।

भगवान् वेदव्यासजी ने भी प्राणी के असंख्य जन्म होने का उल्लेख किया है -

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।
संसारेष्वनुभूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे ॥ (महाभारत)

पुनर्मनः पुनरायुर्मऽ आगन्पुनः प्राणः पुनरात्मा मऽ आगन्पुनश्चक्षुः श्रोत्रं मऽ आगन् । वैश्वानरोऽ अदब्धस्तनूपाऽ अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ।

(शुक्ल यजुर्वेद ४।१५)

'मेरा मन सुषुप्ति काल में विलीन होकर पुनः शरीर में प्राप्त हुआ है। शयन काल में मेरी आयु नष्टप्राय होकर अब फिर मुझे प्राप्त हुई है। मेरे प्राण फिर मुझे प्राप्त हुए हैं। मेरी आत्मा (जीवात्मा) फिर मुझे प्राप्त हुई है। मेरे नेत्र फिर मुझे प्राप्त हुए हैं। मेरे कान फिर मुझे प्राप्त हुए हैं। समस्त पुरुषों का उपकार करनेवाला, किसी से भी हिंसा न पानेवाला, सभी के शरीर का पालन करनेवाला जो अग्निदेव है, वह सभी प्रकार के अकथनीय और निन्दनीय पापों से हमारी रक्षा करे।'

उपर्युक्त मन्त्र से ज्ञात होता है कि मनुष्य जब सो जाता है, तब उसकी समस्त इन्द्रियाँ विलीन-सी प्रतीत होती हैं, जिस कारण वह मनुष्य मरा हुआ-सा प्रतीत होता है और वह मनुष्य जब जाग जाता है, तब उसकी इन्द्रियाँ पुनः प्राप्त हुई-सी प्रतीत होती हैं, जिस कारण वह मनुष्य जीवित प्रतीत होता है। निष्कर्ष यह है कि—जिस प्रकार मनुष्य सो जाने पर अपनी समस्त इन्द्रियों को खो देता है और जाग जाने पर पुनः उन्हें प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार मनुष्य शयन करने पर मृत्यु को प्राप्त करता है और जाग जाने पर पुनः जन्म (पुनर्जन्म) को प्राप्त करता है।

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥

(अथर्ववेद ११।४।१४)

'हे प्राण ! शरीर धारण करनेवाला मनुष्य स्त्री के गर्भ में तुम्हारे प्रवेश से ही प्राण और अपानरूपी व्यापार करता है अर्थात् वह श्वास-प्रश्वास लेता है और उच्छ्वास छोड़ता है। तुम गर्भस्थ शिशु को

माता के द्वारा भोजन किये हुए आहार (पदार्थ) से हृष्ट-पुष्ट करते हो। फिर वह पुरुष पुण्य और पाप का फल भोगने के लिये भूमि में जन्म ग्रहण करता है।'

उपर्युक्त मन्त्र में **'स पुनः जायते'** (वह पुनर्जन्म लेता है) जो कहा गया है, यह पुनर्जन्म को स्पष्ट बतला रहा है।

उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः॥

(अथर्ववेद १०।८।२८)

'हे आत्मा, तुम ही समस्त प्राणियों के पिता अथवा पुत्र अथवा ज्येष्ठ भ्राता अथवा कनिष्ठ भ्राता हो। वही तुम जीव के मन में प्रविष्ट होकर प्रथम उत्पन्न हुए हो और वही तुम फिर गर्भ के भीतर स्थित हो जाते हो।'

उपर्युक्त मन्त्र से स्पष्ट है कि एक ही आत्मा सम्बन्ध-विशेष से कभी पिता, कभी पुत्र, कभी बड़ा भाई और कभी छोटा भाई कहा जाता है। अतः एक आत्मा का कालान्तर में अनेक नाम धारण करना ही पुनर्जन्म को व्यक्त करता है

उपर्युक्त वेदादि सद्ग्रन्थों के अनेक प्रमाणों से पुनर्जन्म स्पष्ट सिद्ध है। ऐसी स्थिति में भी जो लोग पुनर्जन्म को नहीं मानते, वे दम्भी और ईश्वरविरोधी हैं।

पुनर्जन्म को मानने के लिये परमेश्वर को मानना आवश्यक है। परमेश्वर को मानने से ही पुनर्जन्म में विश्वास होता है। अतः जो मनुष्य परमेश्वर को मानता हुआ पुनर्जन्म में विश्वास करता है, वह जन्म-मरण की परम्परा को भी अवश्य मानता है। जन्म-मरण की परम्परा को मानने से ही 'पुनर्जन्म' सिद्ध होता है। पुनर्जन्म के सिद्ध होने से और पुनर्जन्म में विश्वास रखने से ही हिन्दूधर्म सुदृढ़ और सुरक्षित रह सकता है।

वेदोंमें परलोक

प्राणिमात्र का आवागमन अनादि काल से चला आ रहा है। प्रत्येक प्राणी कर्मफल भोगने के लिये ही वारम्बार शरीर धारण करता है। अतः प्रत्येक प्राणी को अपने शुभाशुभ कर्मानुसार कर्मफल अवश्य भोगने पड़ते हैं। लिखा भी है—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि॥

'मनुष्य जो शुभ और अशुभ कर्म करता है, उसका फल उसको अवश्य भोगना पड़ता है। बिना भोगा हुआ कर्म करोड़ों कल्प तक भी क्षीण नहीं होता।'

अतः स्पष्ट है कि कर्मों का भोग भोगने से ही क्षय होता है— '**कर्मणां भोगादेव क्षयः।**'

'**जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः**' (गीता २।२७) के अनुसार जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु तो निश्चित ही है। अतः प्रत्येक मनुष्य को किसी न किसी दिन अपने पाञ्चभौतिक शरीर को अवश्य ही त्यागना पड़ता है। जब मनुष्य अपने शरीर को त्यागता है, तब वह अपने शुभाशुभ कर्मानुसार 'लोक' को प्राप्त करता है। अतः जो मनुष्य अच्छा कर्म करता है, उसे अच्छे लोक की प्राप्ति होती है और जो मनुष्य वुरा कर्म करता है, उसे बुरे लोक की प्राप्ति होती है। गीता (१४।१८) में भी कहा है—

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥

'सत्त्वगुण-सम्पन्न पुरुष सात्त्विक कर्मों के द्वारा स्वर्गादि उच्च लोकों में जाते हैं और रजोगुण-सम्पन्न पुरुष राजसिक कर्म के द्वारा मध्य में अर्थात् मनुष्य लोक में रहते हैं एवं तमोगुण-सम्पन्न पुरुष तामसिक कर्म के द्वारा अधोगति को अर्थात् पशु आदि निकृष्ट योनियों को प्राप्त करते है।'

मनुस्मृति (१२।४०) में भी लिखा है—

देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ॥

'सत्त्वगुणी पुरुष देवयोनि को, रजोगुणी पुरुष मनुष्ययोनि को और तमोगुणी पुरुष पशुयोनि को प्राप्त करते हैं। यही पुरुषों की तीन प्रकार की गति कही गयी है।'

'तद्य इह रमणीयाचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा।' (छान्दोग्योपनिषद् ५।१०।७)

'मृत्यु को प्राप्त होनेवाले मनुष्यों में जो पुण्यशील हैं, वे अपने पुण्य कर्मों के द्वारा तत्काल उत्तम योनि को प्राप्त करते हैं। वे ब्राह्मण योनि, क्षत्रिय योनि अथवा वैश्य योनि को प्राप्त करते हैं। जिन मनुष्यों के पापमय कर्म हैं, वे अपने पापकर्मों के द्वारा पापमय कुत्ते की योनि, सूकर की योनि अथवा चाण्डाल की योनि प्राप्त करते है।'

पाप और पुण्य का समस्त फल इसी लोक में (मनुष्य लोक में) मनुष्य को भोगना पड़ता है, ऐसी बात नहीं है। क्योंकि कभी-कभी देखने में आता है कि—धर्मात्मा लोग धर्माचरण करते हुए भी अनेक दुःख भोगते हैं और पापात्मा प्राणी घोर से घोर पापाचार, अनाचार करते हुए भी सुख भोगते हैं। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य के समस्त कर्मों का भोग इसी लोक में पूर्ण नहीं हो जाता, किन्तु वह दूसरे लोको में भी पूर्ण होता है।

जो प्राणी इस लोक में समस्त भोगों को नहीं भोग सकता, वह परलोक में जाकर अनेक काल तक वहाँ के सुख अथवा दुःख को भोगता है और जब उसका भोग समाप्त हो जाता है, तब वह पुनः मृत्युलोक में जन्म ग्रहण करता है।

शतपथब्राह्मण में देखिये—

पितृलोक और मनुष्यलोक (श० ब्रा० ३।७।१।२५), **ब्रह्मलोक** (श० ब्रा० १४।७।१।१९), **देवलोक** (श० ब्रा० १४।७।१।३६), **गन्धर्वलोक** (श० ब्रा० १४।७।१।३७)।

परलोक सनातनधर्म का प्रधान अङ्ग है। सनातनधर्म के समस्त कार्य श्रद्धा और विश्वास पर ही निर्भर रहते हैं। अतः सनातनधर्म के अङ्गभूत परलोक को मानने के लिये श्रद्धा और विश्वास की विशेष आवश्यकता है। श्रद्धा और विश्वास के बिना परलोक की सिद्धि कथमपि नहीं हो सकती। इसलिये परलोक का अस्तित्व केवल श्रद्धा और विश्वास पर ही विशेष निर्भर करता है।

जो मनुष्य परलोक के अस्तित्व में श्रद्धा और विश्वास करता है, वह 'आस्तिक' कहा जाता है और जो मनुष्य परलोक के अस्तित्व में श्रद्धा और विश्वास नहीं करता, वह 'नास्तिक' कहा जाता है। इसी आशय से भगवान् पाणिनि ने भी **'अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः'** (पा० सू० ४।४।६०) यह सूत्र लिखा है। इस सूत्र की व्याख्या पण्डितप्रकाण्ड श्रीमान् भट्टोजि दीक्षित ने इस प्रकार की है—

अस्ति परलोक इत्येवं मतिर्यस्य स आस्तिकः।
नास्ति परलोक इत्येवं मतिर्यस्य स नास्तिकः।

'जिसका परलोक में विश्वास हो, वह 'आस्तिक' कहा जाता है। जिसका परलोक में विश्वास न हो, वह 'नास्तिक' कहा जाता है।'

जो मनुष्य केवल इहलोक को मानता है और परलोक को नहीं मानता, उसके विषय में स्वयं यमराज ने कहा है—

'अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे'
(कठोपनिषद् १।२।६)

'यह लोक ही है, परलोक नहीं है, इस प्रकार माननेवाले मूर्ख को मुझ मृत्यु के वश में बार-बार आना पड़ता है।'

भगवान् श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन से कहा है—'जो मनुष्य इहलोक और परलोक के विषय में संशययुक्त है, उसका यह लोक परलोक दोनों ही भ्रष्ट हो जाता है'—

'नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ।'

(गीता ४।४०)

'संशयात्मा पुरुष के लिये न सुख है, न यह लोक है और न परलोक है ।'

अतः मनुष्य को बारम्बार जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिये और इहलोक तथा परलोक को सुखद बनाने के लिये संशयरहित होकर इहलोक और परलोक दोनों को मानना चाहिये ।

कुछ लोग प्रत्यक्ष प्रमाणद्वारा प्रत्येक वस्तु का निर्णय करना चाहते हैं, किन्तु सभी वस्तुओं का प्रत्यक्ष प्रमाणद्वारा निर्णय नहीं किया जा सकता । यही स्थिति 'परलोक' की भी है । परलोक का भी प्रत्यक्ष प्रमाणद्वारा निर्णय नहीं किया जा सकता । परलोक का निर्णय तो वस्तुतः शास्त्रों के आधार पर ही किया जा सकता है । अतएव (गीता १६।२४) में लिखा है—

'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।'

अतः मनुष्य को सर्वदा शास्त्र-वचनों पर विश्वास रखकर परलोक को मानना चाहिये । जो मनुष्य शास्त्रवचनों पर विश्वास कर परलोक को मानता है, वह इहलोक और परलोक दोनों में सुख-शान्ति प्राप्त करता है और जो शास्त्रवचनों पर विश्वास न कर परलोक को नहीं मानता, वह इहलोक और परलोक दोनों में विविध दुःखों को भोगता है ।

परलोक-विवेचन

'इहलोक' शब्द से ही 'परलोक' का निश्चय हो जाता है । जब मनुष्य अपने पाञ्चभौतिक शरीर को त्यागकर इहलोक से परलोक के लिये प्रस्थान करता है, तो वह इहलोक में किये हुए अपने शुभाशुभ कर्म को साथ लेकर परलोक में कर्मफलदाता यमराज के सामने उपस्थित होता है, तो वे उसके शुभाशुभ कर्म के अनुसार उसको

परलोक के किसी लोक-विशेष में भेज देते हैं, जहाँ वह नियमित समय तक रहकर अपने किये हुए कर्मानुसार फल भोगता है।

प्रत्येक मनुष्य के किये हुए कर्मों के फल नियत रहते हैं, उनमें कभी परिवर्त्तन नहीं होता। जिसका जैसा कर्म होता है, उसे मृत्यु के बाद तदनुसार फल भोगना पड़ता है।

मृत्यु के बाद मनुष्य की मुख्यतया दो गति निर्धारित हैं—सद्गति और असद्गति। जिनके शुभ कर्म होते हैं, उन पुण्यात्माओं की सद्गति होती है अर्थात् उन्हें स्वर्गादि उत्तम लोकों की प्राप्ति होती है और जिनके अशुभ कर्म होते हैं, उन पापात्माओं की असद्गति होती है अर्थात् उन्हें नरकादि अधम लोकों की प्राप्ति होती है।

शरीर से प्राणोत्क्रमण होने के बाद (प्राण निकलने के बाद) मृत स्थूल-शरीर को अग्नि में जला देने पर भी 'सूक्ष्म-शरीर' भस्म नहीं होता, क्योंकि वह आत्मा के साथ सम्बन्धित होने के कारण आत्मा की तरह अजर-अमर है। इसी बात को गीता में भी कहा है—**'नायं हन्ति न हन्यते'** (गीता २।१९), **'न हन्यते हन्यमाने शरीरे'** (गीता २।२०)।

अतः सुस्पष्ट है कि मृत्यु के बाद रज और वीर्य से बने हुए स्थूल-शरीर का ही अग्नि आदि के द्वारा नाश होता है, सूक्ष्म-शरीर का नहीं। अर्थात् मनुष्य का स्थूल-शरीर इहलोक में ही रह जाता है और सूक्ष्म-शरीर परलोक में जाता है।

अथर्ववेद में लिखा है—यज्ञ आदि श्रेष्ठ-कर्म करनेवाले यज्ञ के यजमान की जब मृत्यु होती है, तो उसको स्वर्ग आदि उत्तम लोकों में ले जाने के लिये अग्निदेव से प्रार्थना की जाती है। देखिए अथर्ववेद १८।३।७१, १८।४।१० और १८।४।१४।

अतः सुस्पष्ट है कि जिस तरह इहलोक (मृत्युलोक) है, उसी तरह परलोक (स्वर्गादिलोक) भी है। मृत्यु के बाद मनुष्य का स्थूल-शरीर ही इहलोक में रहता है और सूक्ष्म-शरीर परलोक में जाता है।

परलोकको सुधारनेके उपाय

परलोक को सुधारने के लिये मनुष्य को गीतोक्त दैवी-सम्पत्ति का आश्रय लेना चाहिये। दैवी-सम्पत्ति के आश्रय से मनुष्य का स्वभाव देवता के सदृश बन जाता है, जिससे वह सर्वदा सभी में 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की दृष्टि रखता है। ऐसा व्यक्ति सर्वदा सभी के लिये हित-चिन्तन में तत्पर रहता हैं और स्वप्न में भी किसी के अनिष्ट का चिन्तन नहीं करता। वह सर्वत्र ईश्वर की व्यापकता और सभी में ईश्वर का अस्तित्व समझता है। वह ईश्वर में विश्वास और धर्म में श्रद्धा विश्वास रखता है। वह सभी में समभाव और सुहृदभाव रखता है, सभी के सुख-दुःख को अपना सुख-दुख समझता है। वह सर्वदा परोपकार में तत्पर रहता हुआ परमात्म-चिन्तन में संल्लग्न रहता है। वह अपने पिता, माता एवं गुरुजनों में श्रद्धा-भक्ति रखता हुआ उनकी सेवा-शुश्रूषा करता है। वह इहलोक की तरह परलोक में पूर्ण विश्वास रखता है। इस प्रकार जो लोग दैवी-गुणों से सम्पन्न रहते हैं, वे ही अपना इहलोक और परलोक दोनों सुधार लेते हैं। परलोक को सुधारने के लिये बहुत से उपाय हैं, जिनमें से कुछ उपाय लिखे जाते हैं। इनके पालन करने से अवश्य ही परलोक में सुधार हो सकता है।

१—इहलोक की तरह परलोक को भी मानना चाहिये।

२—अच्छे और बुरे कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है, यह विश्वास रखना चाहिये।

३—अपने पितरों का श्राद्ध और तर्पण सदा करना चाहिये।

४—वेद और वेदोक्त कर्मों में श्रद्धा विश्वास करना चाहिये।

५—पर-निन्दा और पर-हानि से सर्वदा बचना चाहिये।

६—परद्रव्य और पराये हक से सदा बचना चाहिये।

७—गीता, रामायण और श्रीमद्भागवत का अध्ययन और इनकी कथा सुननी चाहिये।

८—महापुरुषों के चरित्र प्रतिदिन सुनने चाहिये और तदनुसार अपने चरित्र को बनाना चाहिये।

९—अपने-अपने बालकों को ऐतिहासिक, पौराणिक और धार्मिक कथाएँ सुनानी चाहिये, जिनसे उनका चरित्र उज्ज्वल हो।

१०—अपना रहन-सहन, खान-पान सादगी से परिपूर्ण और सात्त्विक होना चाहिये।

११—जो मनुष्य जिस आश्रम में रहे, वह उसके अनुरूप रहे और उसको उस आश्रम की मर्यादा का पालन पूर्णतया करना चाहिवे।

१२—प्रत्येक जाति को अपनी जाति के अनुसार धर्म का पालन करना चाहिये।

१३—अपने किये हुए धर्म की और अपने किये हुए दान की प्रशंसा न तो स्वयं करनी चाहिये और न दूसरे से सुननी चाहिये।

१४—आत्मस्तुति या आत्मप्रशंसा न तो स्वयं करनी चाहिये और न दूसरे से सुननी चाहिये।

१५—अपने आत्मा को सब प्रकार से उन्नतिशील बनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

१६—पुरुष को परस्त्री और स्त्री को परपुरुष से सर्वदा बचना चाहिये।

१७—वेदादि सच्छास्त्रों की निन्दा, गुरुजनों की निन्दा, ब्राह्मणों की निन्दा, साधु-महात्माओं की निन्दा, धार्मिकों की निन्दा और देवी-देवताओं की निन्दा न तो स्वयं करनी चाहिये और न दूसरों से सुननी चाहिये।

१८—मनसा-वाचा-कर्मणा किसी की आत्मा को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिये।

१९—धर्म करने से उत्तम लोक की प्राप्ति और अधर्म करने से अधम लोक की प्राप्ति होती है, इसमें विश्वास रखना चाहिये।

२०—धर्माचरण से समस्त दुःखों की निवृत्ति होकर सुख की प्राप्ति होती है, यह निश्चित समझना चाहिये।

२१—परमात्मा की सर्वव्यापकता पर पूर्ण विश्वास करना चाहिये।

२२—परमात्मा सब के शुभाशुभ कर्मों को देखते हैं और तदनुसार वे सब को उचितानुचित दण्ड देते हैं, ऐसा विश्वास करना चाहिये।

२३—परमात्मा की कृपा के बिना कोई भी मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता, ऐसा दृढ़ विश्वास रखना चाहिये।

२४—परमात्मा की कृपा से ही प्रत्येक मनुष्य को सन्तति, धन, विद्या, बल, आरोग्य आदि सुखों की प्राप्ति होती है, यह विश्वास होना चाहिये।

२५—परमात्मा ही सर्वविध पूर्णता से परिपूर्ण कहे गये हैं। अतः परमात्मा की कृपा से ही मनुष्य पूर्णता को प्राप्त कर सकता है, यह दृढ़ निश्चय रखना चाहिये।

२६—परमात्मा की भक्ति से ही मनुष्य सर्वगुणसम्पन्न हो सकता है, इस बात को कभी भी नहीं भूलना चाहिये।

२७—परमात्मा को ही समस्त संसार का कर्ता, धर्ता और संहर्ता समझना चाहिये।

२८—परमात्मा को ही सब का रक्षक और पालक समझना चाहिये।

२९—परमात्मा को सवदा स्मरण रखना चाहिये।

३०—सत्य ही परमात्मा का असली स्वरूप है। अतः सत्यस्वरूप परमात्मा का अथवा परमात्मस्वरूप सत्य का कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिये।

३१—पुरुष को अपने माता, पिता और गुरु को ईश्वर का स्वरूप समझना चाहिये और स्त्री को अपने पति को ईश्वर का स्वरूप समझना चाहिये।

३२—अपने गुणों की प्रशंसा और आत्माभिमान नहीं करना चाहिये।

३३—किसी भी जीव की हिंसा कभी नहीं करनी चाहिये। जीव-हिंसा को महापाप समझना चाहिये।

३४—परमात्मा की भक्ति से कभी भी विमुख नहीं होना चाहिये।

३५—प्राणिमात्र से अपने परिवार की तरह प्रेम करना चाहिये।

३६—ज्ञान का सम्पादन करना चाहिये। ज्ञान से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है। ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती, यह विश्वास रखना चाहिये।

३७—ज्ञान से ही भगवान् के वास्तविक स्वरूप का परिचय मिलता है। अतः ज्ञान-सम्पादनार्थ सर्वदा प्रयत्नशील होना चाहिये।

३८—अपनी माता से भी बढ़कर सब का कल्याण करनेवाली गोमाता है। अतः गोमाता की सेवा और रक्षा सर्वदा करनी चाहिये।

३९—साधु, सन्त, महात्मा और विद्वान् का सर्वदा आदर करना चाहिये।

४०—सन्ध्योपासन, पञ्चमहायज्ञ, तीर्थयात्रा और अतिथिसेवा सदा करनी चाहिये।

४१—भगवत्सेवार्थ धनिकों को द्रव्यदान, श्रमिकों को श्रमदान, विद्वानों को विद्यादान और बलवानों को बलदान करना चाहिये।

४२—अपने से सभी को श्रेष्ठ समझना चाहिये।

४३—दूसरे किसी का भी, भूलकर अपमान नहीं करना चाहिये।

४४—दूसरों का दोष न देखकर अपना दोष देखना चाहिये।

४५—सब को सर्वदा सद्भाव और परोपकारसम्पन्न होना चाहिये।

४६—अपने अमूल्य समय को सर्वदा प्रभु-भक्ति और सत्सङ्ग में लगाना चाहिये।

४७—सर्वदा मिथ्या-अभिमान और मिथ्या-प्रपञ्चों से बचना चाहिये।

४८—बड़ी से बड़ी आपत्ति आने पर भी धैर्य का त्याग नहीं करना चाहिये।

४९—मानव-जीवन बार-बार नहीं मिलता। अतः इस अमूल्य जीवन का सर्वदा सदुपयोग करना चाहिये।

५०—प्रभु को सर्वदा स्मरण करना चाहिये।



परिशिष्ट—२

पुराणोंमें नरकगामियोंको यातनाओंका वर्णन

श्रीमद्भागवत (५।२६।८-३६) में २८ प्रकार की नरक-यातनाओं का वर्णन इस प्रकार लिखा है—

१—जो पुरुष दूसरों के धन, सन्तान अथवा स्त्रियों का हरण करता है, उसे अत्यन्त भयानक यमदूत कालपाश में बाँधकर बलात्कार से 'तामिस्र' नरक में गिरा देते हैं। उस अन्धकारमय नरक में उसे अन्न-जल न देना, डण्डे लगाना और भय दिखलाना आदि अनेक प्रकार के उपायों से पीड़ित किया जाता है। इससे अत्यन्त दुखी होकर वह एकाएक मूर्छित हो जाता है।

२—जो पुरुष किसी दूसरे को धोखा देकर उसकी स्त्री आदि को भोगता है, वह 'अन्धतामिस्र' नरक में पड़ता है। वहाँ की यातनाओं में पड़कर वह जड़ से कटे हुए वृक्ष के समान वेदना के मारे सारी सुध-बुध खो बैठता है और उसे कुछ भी नहीं सूझ पड़ता। इसीसे इस नरक को 'अन्धतामिस्र' कहते हैं।

३—जो पुरुष 'यह शरीर ही मैं हूँ और ये स्त्री-धनादि मेरे हैं' ऐसी बुद्धि से दूसरे प्राणियों से द्रोह करके निरन्तर अपने कुटुम्ब के ही पालन-पोषण में लगा रहता है, वह अपना शरीर छोड़ने पर अपने पाप के कारण स्वयं ही 'रौरव' नरक में गिरता है।

जिस पुरुष ने जिन जीवों को जिस प्रकार कष्ट पहुँचाया होता है, परलोक में यमयातना का समय आने पर वे जीव 'रुरु' होकर उसे उसी प्रकार कष्ट पहुँचाते हैं। इसीलिये इस नरक का नाम 'रौरव' है। 'रुरु' सर्प से भी अधिक क्रूर स्वभाववाले एक जीव का नाम है।

४—ऐसा ही 'महारौरव' नरक है। इसमें वह व्यक्ति जाता है, जो और किसी की परवा न कर केवल अपने ही शरीर का पालन-पोषण करता है। वहाँ कच्चा मांस खानेवाले रुरु इसे मांस के लोभ से काटते हैं।

५—जो क्रूर मनुष्य इस लोक में अपना पेट पालने के लिये ज़ीवित पशु या पक्षियों को राँधता है, उस हृदयहीन, राक्षसों से भी गये-बीते पुरुष को यमदूत 'कुम्भीपाक' नरक में ले जाकर खौलते हुए तैल में राँधते है

६—जो मनुष्य इस लोक में माता-पिता, ब्राह्मण और वेद से विरोध करता है, उसे यमदूत 'कालसूत्र' नरक में ले जाते है। इसका घेरा दस हजार योजन है। इसकी भूमि ताँबे की है। इसमें जो तपा हुआ मैदान है, वह ऊपर से सूर्य और नीचे से अग्नि के दाह से जलता रहता है। वहाँ पहुँचाया हुआ पापी जीव भूख-प्यास से व्याकुल हो जाता है और उसका शरीर बाहर-भीतर से जलने लगता है। उसकी बेचैनी यहाँ तक बढ़ती है कि वह कभी बैठता है, कभी लेटता है, कभी छटपटाने लगता है, कभी खड़ा होता है और कभी इधर-उधर दौड़ने लगता है। इस प्रकार उस नर-पशु के शरीर में जितने रोम होते हैं, उतने ही हजार वर्षतक उसकी यह दुर्गति होती रहती है।

७—जो पुरुष किसी प्रकार की आपत्ति न आने पर भी अपने वैदिक मार्ग को छोड़कर अन्य पाखण्ड-पूर्ण धर्मों का आश्रय लेता है, उसे यमदूत 'असिपत्रवन' नरक में ले जाकर कोड़ों से पीटते हैं। जब मार से बचने के लिये वह इधर-उधर दौड़ने लगता है, तब उसके सारे अङ्ग तालवन के तलवार के समान पैने पत्तों से, जिनमें दोनों ओर धारें होती हैं, टूक-टूक होने लगते हैं। तब वह अत्यन्त वेदना से 'हाय मैं मरा' इस प्रकार चिल्लाता हुआ पद-पदपर मूर्च्छित होकर गिरने लगता है। अपने धर्म को छोड़कर पाखण्डमार्ग में चलने से उसे इस प्रकार अपने कुकर्म का फल भोगना पड़ता है।

८—इस लोक में जो पुरुष राजा या राजकर्मचारी होकर किसी निरपराध मनुष्य को दण्ड देता है अथवा ब्राह्मण को शरीर-दण्ड देता है, वह महापापी मरकर 'सूकरमुख' नरक में गिरता है। वहाँ जब महाबली यमदूत उसके अङ्गों को कुचलते हैं, तब वह कोल्हू में पेरे जाते हुए गन्नों के सदृश पीड़ित होकर जिस प्रकार इस लोक में उसके द्वारा सताये हुए निरपराध प्राणी रोते-चिल्लाते थे, उसी प्रकार कभी आर्त्त स्वर से चिल्लाता और कभी मूर्च्छित हो जाता है।

९—जो पुरुष इस लोक में खटमल आदि जीवों की हिंसा करता है, वह 'अन्धकूप' नरक में गिरता है। क्योंकि स्वयं भगवान् ने ही रक्तपानादि उनकी वृत्ति बना दी है और उन्हें उसके कारण दूसरों को कष्ट पहुँचने का ज्ञान भी नही है; किन्तु मनुष्य की वृत्ति भगवान् ने विधि-निषेधपूर्वक बनायी है और उसे दूसरों के कष्ट का ज्ञान भी है। वहाँ वे पशु, मृग, पक्षी, साँप आदि रेंगनेवाले जन्तु, मच्छर, जूँ, खटमल और मक्खी आदि जीव जिनकी हिंसा की थी—उसे सब ओर से काटते हैं। इससे उसकी निद्रा और शान्ति भङ्ग हो जाती है और स्थान न मिलने पर भी वह बेचैनी के कारण उस घोर अन्धकार में इस प्रकार भटकता रहता है जैसे रोगग्रस्त जीव छटपटाया करता है।

१०—जो मनुष्य इस लोक में बिना पञ्चमहायज्ञ किये तथा जो कुछ मिले, उसे बिना किसी दूसरे को दिये स्वयं ही खा लेता है, उसे कौए के समान कहा गया है। वह परलोक में 'कृमिभोजन' नामक निकृष्ट नरक में गिरता है। वहाँ एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा एक कीड़ों का कुण्ड है, उसी में उसे भी कीड़ा बनकर रहना पड़ता है और जब तक अपने पापों का प्रायश्चित्त न करनेवाले उस पापी के बिना दिये और बिना हवन किये खाने के दोष का अच्छी तरह शोधन नहीं हो जाता, तब तक वह उसी में पड़ा-पड़ा कष्ट भोगता रहता है। वहाँ कीड़े उसे नोचते हैं और वह कीड़ों को खाता है।

११—जो व्यक्ति चोरी या बरजोरी से ब्राह्मण के अथवा आपत्ति का समय न होने पर भी किसी दूसरे पुरुष के सुवर्ण और रत्नादि का हरण करता है, उसे मरने पर यमदूत 'सन्दंश' नामक नरक में ले जाकर तपाये हुए लोहे के गोलों से दागते हैं और सँड़सी से उसकी खाल नोचते हैं।

१२—यदि कोईपुरुष अगम्या स्त्री के साथ सम्भोग करता है अथवा कोई स्त्री अगम्य पुरुष से व्यभिचार करती है, तो यमदूत उसे 'तप्तसूर्मि' नामक नरक में ले जाकर कोड़ों से पीटते हैं तथा पुरुष को तपाये हुए लोहे की स्त्री-मूर्त्ति से और स्त्री को तपायी हुई पुरुष-प्रतिमा से आलिङ्गन कराते हैं।

१३—जो पुरुष इस लोक में पशु आदि सभी के साथ व्यभिचार करता है, उसे मृत्यु के बाद यमदूत 'वज्रकण्टकशाल्मली' नरक में गिराते हैं और वज्र के समान कठोर काँटोंवाले सेमर के वृक्षपर चढ़ाकर फिर नीचे की ओर खींचते हैं।

१४—जो राजा या राजपुरुष इस लोक में श्रेष्ठ कुल में जन्म पाकर भी धर्म की मर्यादा का उच्छेद करते हैं, वे उस मर्यादा के अतिक्रमण के कारण मरने पर 'वैतरणी' नदी में पटके जाते हैं। यह नदी नरकों की खाई के समान है; उसमें मल-मूत्र, पीब, रक्त, केश, नख, हड्डी, चर्बी, मांस और मज्जा आदि गन्दी चीजें भरी हुई हैं। वहाँ गिरने पर उन्हें इधर-उधर से जल के जीव नोचते हैं। किन्तु इससे उनका शरीर नहीं छूटता, पाप के कारण प्राण उसे वहन किये रहते हैं और वे उस दुर्गति को अपनी करनी का फल समझकर मन ही मन सन्तप्त होते रहते हैं।

१५—जो लोग शौच और आचार के नियमों का परित्याग कर तथा लज्जा को तिलाञ्जलि देकर इस लोक में शूद्राओं के साथ सम्बन्ध गाँठकर पशुओं के समान आचरण करते हैं, वे भी मरने के बाद पीब, विष्ठा, मूत्र, कफ़ और मल से भरे हुए 'पूयोद' नामक समुद्र में गिरकर उन अत्यन्त घृणित वस्तुओं को ही खाते हैं।

१६—इस लोक में जो ब्राह्मणादि उच्च वर्ण के लोग कुत्ते या गधे पालते और शिकार आदि में लगे रहते हैं तथा शास्त्र के विपरीत पशुओं का वध करते हैं, मरने के पश्चात् वे 'प्राणरोध' नरक में डाले जाते हैं और वहाँ यमदूत उन्हें लक्ष्य बनाकर वाणों से बींधते हैं।

१७—जो पाखण्डी लोग पाखण्डपूर्ण यज्ञों में पशुओं का बध करते हैं, उन्हें परलोक में 'वैशस' (विशसन) नरक में डालकर वहाँ के अधिकारी बहुत पीड़ा देकर काटते हैं।

१८—जो द्विज कामातुर होकर अपनी सवर्णा भार्या को वीर्यपान कराता है, उस पापी को मरने के बाद यमदूत वीर्य की नदी 'लालभक्ष' नामक नरक में डालकर वीर्य पिलाते हैं।

१६—जो कोई चोर अथवा राजा या राजपुरुष इस लोक में किसी के घर में आग लगा देते हैं, किसी को विष दे देते हैं अथवा गाँवों या व्यापारियों की टोलियों को लूट लेते हैं, उन्हें मरने के पश्चात् 'सारमेयादन' नामक नरक में वज्र की-सी दाढ़ोंवाले सात सौ वीस यमदूत कुत्ते बनकर बड़े वेग से काटने लगते हैं।

२०—जो पुरुष किसी की गवाही देने में, व्यापार में अथवा दान के समय किसी भी तरह झूठ बोलता है, वह मरने पर आधार-शून्य 'अवीचिमान्' नरक में पड़ता है। वहाँ उसे सौ योजन ऊँचे पहाड़ के शिखर से नीचे को सिर करके गिराया जाता है। उस नरक की पत्थर की भूमि जल के समान जान पड़ती है। इसीलिये इसका नाम 'अवीचिमान्' है। वहाँ गिराये जाने से उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाने पर भी प्राण नहीं निकलते, इसलिये इसे बार-बार ऊपर ले जाकर पटका जाता है।

२१—जो ब्राह्मण या ब्राह्मणी अथवा व्रत में स्थित और कोई भी प्रमादवश मद्यपान करता है तथा जो क्षत्रिय या वैश्य सोमपान करता है, उन्हें यमदूत 'अयःपान' नामक नरक में ले जाते हैं और उनकी छाती पर पैर रखकर उनके मुँह में आग से गलाया हुआ लोहा डालते हैं।

२२—जो पुरुष इस लोक में निम्न श्रेणी का होकर भी अपने को बड़ा मानने के कारण जन्म, तप, विद्या, आचार, वर्ण या आश्रम में अपने से बड़ों का विशेष सत्कार नहीं करता, वह जीता हुआ भी मरे के ही समान है। उसे मरने पर 'क्षारकर्दम' नामक नरक में नीचे को सिर करके गिराया जाता है और वहाँ उसे अनन्त पीड़ाएँ भोगनी पड़ती हैं।

२३—जो पुरुष इस लोक में नरमेधादि के द्वारा भैरव, यक्ष, राक्षस आदि का यजन करते हैं और जो स्त्रियाँ पशुओं के समान पुरुषों को खा जाती हैं, उन्हें वे पशुओं की तरह मारे हुए पुरुष यमलोक में राक्षस होकर तरह-तरह की यातनाएँ देते हैं और 'रक्षोगणभोजन' नामक नरक में कसाइयों के समान कुल्हाड़ी से काट-काट कर उसका रक्त पीते हैं। तथा जिस प्रकार वे मांसभोजी पुरुष इस लोक में उनका माँस भक्षण करके आनन्दित होते थे, उसी प्रकार वे भी उनका रक्तपान करते और आनन्दित होकर नाचते गाते हैं।

२४—इस लोक में जो लोग बन या गाँव के निरपराध जीवों को—जो सभी अपने प्राणों को रखना चाहते हैं—तरह-तरहके उपायों से फुसलाकर अपने पास बुला लेते हैं और फिर उन्हें काँटे से बेधकर या रस्सी से बाँधकर खिलवाड़ करते हुए तरह-तरह की पीड़ाएँ देते हैं, उन्हें भी मरने के पश्चात् यमयातनाओं के समय 'शूलप्रोत' नामक नरक में शूलों से बेधा जाता है। उस समय जब उन्हें भूख-प्यास सताती है और कङ्क, बटेर आदि तीखी चोंचोंवाले नरक के भयानक पक्षी नोचने लगते हैं, तब अपने किये हुए सारे पाप याद आ जाते हैं।

२५—इस लोक में जो सर्पों के समान उग्र स्वभाववाले पुरुष दूसरे जीवों को पीड़ा पहुँचाते हैं, वे मरने पर 'दन्दशूक' नामक नरक में गिरते हैं। वहाँ पाँच-पाँच, सात-सात मुँहवाले सर्प उनके समीप आकर उन्हें चूहों की तरह निगल जाते हैं।

येऽनभ्यासवलाद्वक्तुं न जानन्ति वचोऽप्रियम् ।
प्रियवाक्यैकविज्ञानास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड ९६।३६)

'जिन्हें किञ्चिन्मात्र भी अप्रिय-कठोर बोलने का अभ्यास नहीं, किन्तु जो सदा मीठा ही बोलते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

वापीकूपतडागानां प्रपानां देववेश्मनाम् ।
आश्रमाणाञ्च कर्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड ९६।३८)

'कुआँ, बावली, तालाब, प्याऊ, देवमन्दिर और आश्रम बनानेवाले स्वर्ग में जाते हैं।'

अवन्ध्यं दिवसं कर्तुं धर्मेणैकेन सर्वथा ।
प्रीतिं गृह्णन्ति ये नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(पद्मपुराण. भूमिखण्ड ९६।४१)

'जो लोग केवल धर्म का आश्रय ले अपने सब दिवसों को सफल करते रहते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

आक्रोशन्तं स्तुवन्तश्च तुल्यं पश्यन्ति ये नराः ।
शान्तात्मानो जितात्मानस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड ९६।४२)

'जो लोग गाली देनेवाले और स्तुति करनेवाले को समान देखते हैं, जिनका मन और आत्मा शान्त तथा वश में है, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

मनसश्चेन्द्रियाणाञ्च नित्यं संयमने रताः ।
त्यक्तशोकभयक्रोधास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड ९६।४७)

'जो लोग मन तथा इन्द्रियों का नियमन करने में लगे रहते हैं और शोक, भय एवं क्रोध से रहित हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

कर्मणा मनसा वाचा नोपतापयते परम् ।
सर्वथा शुद्धभावो यः स याति त्रिदिवं नरः ॥

(पद्मपुराण, भूमिखण्ड २४३।६८)

'जो मन, वचन, कर्म से किसी को कष्ट नहीं देता और सर्वथा शुद्ध भाववाला है, वह स्वर्ग में जाता है।'

सर्वभूतदयावन्तो विश्वास्याः सर्वजन्तुषु ।
त्यक्तहिंसासमाचारास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० १३)

'जो प्राणिमात्र पर दया रखते, जिन पर सभी प्राणी विश्वास करते और जिन्होंने हिंसा त्याग दी है और उत्तम आचारवाले हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

परस्वे निर्ममा नित्यं परदारविवर्जकाः ।
धर्मलब्धान्नभोक्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० १३)

'जो सज्जन दूसरे के धन पर कभी भी मन नहीं चलाते, परायी स्त्री से सदा ही विरत रहते हैं और धर्मपूर्वक पुरुषार्थ से अन्न उपार्जन करके भोगते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

मातृवत्स्वसृवच्चैव नित्यं दुहितृवच्च ये ।
परदारेषु वर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० १३)

'जो सज्जन परायी स्त्रियों को सदा ही माता, बहन अथवा कन्या के समान समझते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

स्तैन्यान्निवृत्ताः सततं सन्तुष्टाः स्वधनेन च ।
स्वभाग्यान्युपजीवन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० १३)

'जो सज्जन कभी भी चोरी नहीं करते, सदा अपने धन में ही सन्तुष्ट रहते, अपने भाग्यानुसार (कर्म करते हुए) भाग्य पर ही विश्वास करके अपना निर्वाह करते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

स्वदारनिरता ये च ऋतुकालाभिगामिनः ।
अग्राम्यसुखभोगाश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० १३)

'जो सज्जन अपनी ही स्त्री में रत रहते हैं और ऋतुकाल में सन्तानोत्पत्ति के ही लिये गमन करते हैं न कि इन्द्रिय सुख के लिये, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

परदारेषु ये नित्यं चरित्रावृतलोचनाः ।
यतेन्द्रियाः शीलपरास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० १३)

'जो सज्जन कभी भी दूसरे की स्त्री को बुरी दृष्टि से नहीं देखते और अपनी इन्द्रियों को सदा ही वश में रखते हैं एवं शान्ति-स्वभाव से रहते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

श्लक्ष्णां वाणीं निराबाधां मधुरां पापवर्जिताम् ।
स्वागतेनाभिभाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० १३)

'जो वाणी कोमल एवं प्रिय तथा बाधा-रहित साफ-साफ मतलब बतानेवाली और मीठी होने पर भी पापरहित अर्थात् झूठ न हो, जो सज्जन ऐसी वाणी के साथ सबका आदर सत्कार करते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

परुषं ये न भाषन्ते कटुकं निष्ठुरं तथा।
अपैशुन्यरताः सन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः॥

(महाभारत, अनुशासन प० १३)

'जो सज्जन कठोर, कड़वी और निष्ठुर वाणी कभी भी नहीं बोलते एवं किसी की भी निन्दा (चुगली) नहीं करते, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

पिशुनां न प्रभाषन्ते मित्रभेदकरीं गिरम्।
ऋतं मैत्रं तु भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥

(महाभारत, अनुशासन प० १३)

'जो सज्जन मित्रों के आपस में भेद डालनेवाली चुगली नहीं करते और साथ ही ऐसी वाणी बोलते हैं, जो सत्य तथा मित्रता को बढ़ानेवाली होती है, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

शठप्रलापाद्विरता विरुद्धपरिवर्जकाः।
सौम्यप्रलापिनो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः॥

(महाभारत, अनुशासन प० १३)

'जो सज्जन जो बात हितकर नहीं है तथा आपस में विपरीत है, उस पर कभी भी तर्क नहीं करते। जो बात हितकर एवं ज्ञान देनेवाली है, उसकी चर्चा सदा ही करते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

न कोपाद् व्याहरन्ते ये वाचं हृदयदारिणीम्।
शान्तं वदन्ति क्रुद्धाऽपि ते नराः स्वर्गगामिनः॥

(महाभारत, अनुशासन प० १३)

'जो सज्जन क्रोध आने पर भी ऐसी वाणी नहीं बोलते, जिससे दूसरों के हृदय को चोट पहुँचे, क्रोध आने पर भी शान्ति से ही बोलते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

अरण्ये विजने न्यस्तं परस्वं दृश्यते यदा ।
मनसोऽपि न हसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० १३)

'जो सज्जन जङ्गल में या निर्जन स्थान में पड़े हुए अथवा रक्खे हुए भी दूसरे के धन को देखकर उसे लेने की इच्छा मन में भी नहीं लाते, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

ग्रामे गृहे वा ये द्रव्यं पारक्यं विजने स्थितम् ।
नाभिनन्दन्ति वै नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० १३)

'जो सज्जन गाँव या घर में भी निर्जन स्थान में रक्खे हुए दूसरे के धन को देखकर कभी भी प्रसन्न नहीं होते अथवा मन नहीं चलाते, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

तथैव परदारान् ये कामवृत्तान् रहोगतान् ।
मनसाऽपि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० १३)

'उसी प्रकार कामवासना से युक्त एवं एकान्त स्थान में मिली हुई परायी स्त्री को जो सज्जन मन से भी कभी नहीं चाहते, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

शत्रुं मित्रं च ये नित्यं तुल्येन मनसा नराः ।
भजन्ति मैत्राः सङ्गम्य ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० १३)

'जो सज्जन मिलने पर शत्रु ओर मित्र को सदा एक ही मन से अभिनन्दन करते हैं तथा जो सब से ही मित्रता रखते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

अवैरा ये त्वनायासा मैत्री चित्तरताः सदा ।
सर्वभूतदयावन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० १३)

'जो सज्जन बैर-विरोध नहीं करते, सदा सबसे मित्रता का भाव रखते एवं सभी प्राणियों पर दया करते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं ।'

शुभानामशुभानां च कर्मणा फलसञ्चये ।
विपाकज्ञाश्च ये देवि ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० १३)

'जो सज्जन शुभ और अशुभ कर्मों के परिणाम को जानते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं ।'

न्यायोचिता गुणोपेता देवद्विजपराः सदा ।
समुत्थानमनुप्राप्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० १३)

'जो सज्जन सदा ही न्यायवान् हैं, गुणवान हैं, देवताओं और गुरुजनों में श्रद्धा रखते हैं तथा आत्माकी उन्नति में लगे रहते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं ।'

सहस्रपरिवेष्टारस्तथैव च सहस्रदाः ।
त्रातारश्च सहस्राणां ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० २३।९६)

'हजारों का भरण-पोषण करनेवाले, हजारों को दान देनेवाले और हजारों की रक्षा करनेवाले स्वर्ग में जाते हैं ।'

आढ्याश्च रूपवन्तश्च यौवनस्थाश्च भारत ।
ये वै जितेन्द्रिया धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० २४।९४)

'धनी, रूपवान् और युवावस्थावाले होने पर भी जो जितेन्द्रिय और धैर्यवान् हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

सुवर्णस्य च दातारो गवां भूमेश्च भारत।
अन्नानां वाससां चैव ते नराः स्वर्गगामिनः॥

(महाभारत, अनुशासन प० २३।६७)

'सुवर्ण, गौ, भूमि, अन्न और वस्त्र का दान करनेवाले स्वर्ग में जाते हैं।'

निवेशनानां धान्यानां रसानाञ्च परन्तप।
स्वयमुत्पाद्य दातारस्ते नराः स्वर्गगामिनः॥

(महाभारत, अनुशासन प० २३।१००)

'मकान, अनाज और रस आदि को स्वयं उत्पन्न कर दान करनेवाले पुरुष स्वर्ग में जाते हैं।'

आत्महेतोः परार्थं वा नर्महास्याश्रयात्तथा।
ये मृषा न वदन्तीह ते नराः स्वर्गगामिनः॥

(महाभारत, अनुशासन प० १४४।६९)

'जो अपने लिये, दूसरे के लिये और हँसी-मजाक में भी कभी झूठ नहीं बोलते, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

पिशुनां ये न भाषन्ते मित्रभेदकरीं तथा।
ऋतं मैत्रन्तु भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥

(महाभारत, अनुशासन प० १४४।२३)

'जो कभी चुगली नहीं करते और न मित्रों में भेद उत्पन्न करनेवाली वाणी कहते तथा सत्य एवं प्रिय भाषण करते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

ये वर्जयन्ति परुषं परद्रोहञ्च मानवाः ।
सर्वभूतसमा दान्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० १४४।२४)

'जो कभी कठोर वचन नहीं बोलते और न किसी से द्रोह करते, अपितु सब प्राणियों में समान भाव रखते एवं मन-इन्द्रियों को वश में रखते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं ।'

असत्प्रलापाद्विरता विरुद्धपरिवर्जकाः ।
सौम्यप्रलापिनो ये च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० १४४।२५)

'असत्य भाषण से दूर रहनेवाले, किसी का विरोध न करनेवाले और मधुर वचन बोलनेवाले स्वर्ग में जाते हैं ।'

श्रुतवन्तो दयावन्तः शुचयः सत्यसङ्गराः ।
स्वैरर्थैः परिसन्तुष्टास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० १४३।३५)

'शास्त्रों के ज्ञाता, दयालु, पवित्र, सत्यप्रतिज्ञ और अपने धन से सन्तुष्ट रहनेवाले स्वर्ग में जाते हैं ।'

श्रद्धावन्तो दयावन्तश्चोक्षाश्चोक्षजनप्रियाः ।
धर्माधर्मविदो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० १४४।३७)

'श्रद्धालु, दयालु, संयमी और संयमियों के प्रिय और धर्माधर्म के सदा जाननेवाले स्वर्ग में जाते हैं ।'

न कोपाद् व्याहरन्ते ये वाचं हृदयदारिणीम् ।
शान्तं वदन्ति क्रुद्ध्वाऽपि ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

(महाभारत, अनुशासन प० १५४।२६)

'जो कभी क्रोध से मन को दुखानेवाली बात नहीं कहते, किन्तु क्रोध में भी मधुर ही बोलते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

सर्वहिंसानिवृत्ता ये नराः सर्वसहाश्च ये।
सर्वस्याश्रयभूताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः॥

(महाभारत, अनुशासन प० २३।६२)

'जो सब प्रकार की हिंसा से निवृत्त हैं और सब कुछ सहन कर लेते हैं तथा सबको आश्रय देनेवाले हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

मातृवत् स्वसृवच्चैव नित्यं दुहितृवत्तथा।
परदारेषु वर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥

(महाभारत, अनुशासन प० ४४।११)

'जो सदा परायी स्त्रियों को माता, बहन और पुत्री के समान देखते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

शुश्रूषाभिस्तपोभिश्च श्रुतमादाय भारत।
ये प्रतिग्रहनिःस्नेहास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥

(महाभारत, अनुशासन प० २३।८६)

'जो लोग गुरुसेवा और तपस्या से विद्या तथा ज्ञान प्राप्त कर दान लेना नहीं चाहते, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

भयार्तानां सशोकानां दरिद्रान् व्याधिकर्षितान्।
विमोचयन्ति ये जन्तून् ते नराः स्वर्गगामिनः॥

(महाभारत, अनुशासन प० २३।८७)

'जो लोग भय से पीडित, शोक से युक्त, दरिद्र और रोगियों को दुःखों से छुड़ाते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

परस्वे निर्ममा नित्यं परदारविवर्जकाः।
धर्मलब्धार्थभोक्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः॥

(ब्रह्मपुराण १९६।१०)

'जो परधन में कभी ममता नहीं रखते और परदारा का त्याग करते तथा धर्म से प्राप्त धन का उपयोग कर काम चलाते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं।'

मृत्युके समय कष्ट पानेवाले मनुष्य

जो देवपूजन, भगवद्भजन, सत्सङ्ग, तीर्थयात्रा और दान-पुण्य नहीं करते, उनको मृत्यु के समय अत्यन्त कष्ट होता है। जो सर्वदा मिथ्या-भाषण करते, स्वधर्म का परित्याग करते, सबकी बुराई करते और दूसरों की वृत्तिच्छेद करते, उनको मृत्यु के समय घोर कष्ट होता है।

जो मोह और अज्ञान फैलाते हैं, उनको मृत्यु के समय महान् भय और कष्ट होता है। जो कुत्सित वृत्ति के मनुष्य हैं और जो सर्वदा सबकी बुराई चाहते हैं, उनको मृत्यु के समय घोर कष्ट होता है। जो झूठी गवाही देते, झूठ बोलते, बुरी बातों का उपदेश देते, माता-पिता और गुरु की निन्दा करते, वेदों की निन्दा करते और देवी-देवताओं की निन्दा करते, वे मृत्यु के समय मूर्च्छाग्रस्त होते हैं और उनको महान् कष्ट होता है।

जो कभी जल का, अन्न का, वस्त्र का, सुवर्ण का, चाँदी का, पुस्तक का, पृथिवी, छाता, जूता आदि का दान नहीं करते, उनको मृत्यु के समय भयङ्कर कष्ट होता है। जो श्राद्ध नहीं करते और जो ब्राह्मण-भोजन नहीं कराते, उनको मृत्यु के समय घोर कष्ट होता है।

(मार्कण्डेयपुराण)

मृत्युके समय कष्ट न पानेवाले मनुष्य

जो देवता और ब्राह्मणों की पूजा में संलग्न रहते, किसी की निन्दा नहीं करते तथा सात्त्विक, उदार और लज्जाशील होते हैं, उन मनुष्यों को मृत्यु के समय कष्ट नहीं होता। जो कामना से, क्रोध

से अथवा द्वेष के कारण स्वधर्म का परित्याग नहीं करते, शास्त्रोक्त आज्ञा का पालन करते हैं, उनको मृत्यु के समय कष्ट नहीं होता : जो कभी मिथ्या-भाषण नहीं करते, जो दो प्रेमियों के पारस्परिक प्रेम में बाधा नहीं डालते और जो आस्तिक, श्रद्धालु और सौम्य हैं, उनको मृत्यु के समय कष्ट नहीं होता। जो माता और पिता की सेवा करते, जो देवी-देवताओं को मानते, जो किसी से राग-द्वेष नहीं रखते, जो सबका कल्याण चाहते, जो सबकी प्रशंसा करते, जो देव-पूजन, भगवद्भजन, सत्सङ्ग, तीर्थयात्रा और दान-पुण्य करते हैं, उनको मृत्यु के समय कष्ट नहीं होता।

(मार्कण्डेयपुराण)



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला २१

माध्यन्दिनशाखीय विवाह-पद्धति

हिन्दीमन्त्रार्थसहिता

[शुभविवाह, अर्कविवाह]

वेदाचार्य श्रीवेणीरामशर्मा गौड़

विवाह पद्धति कर्मकाण्ड का अद्वितीय भाग है। भारतीय हिन्दू समाज में विवाह संस्कार एक प्रधान संस्कार के रूप में प्रतिष्ठित है। इसी के अनन्तर जीवन के सम्पूर्ण दैनिक, नैतिक एवं आर्थिक कार्यों का विभाजन हो जाता है। यह उत्कृष्ट प्रथा एवं भावना वैदिक काल से आज तक निरन्तर चली आ रही है। प्रस्तुत नवीन संस्करण में लेखक ने वैदिक कालीन विवाह संस्कार के स्वरूप का एवं तत्कालीन सभ्यता का विशद वर्णन किया है। अद्यावधि प्रकाशित विवाह पद्धतियों में कोई भी शुद्ध एवं प्रामाणिक संस्करण उपलब्ध नहीं है। प्रस्तुत संस्करण इस अभाव की पूर्ति करने में सक्षम है। इसमें प्रत्येक मन्त्र का अर्थ सुगम हिन्दी भाषा में दिया गया है और पारस्करादि आचार्यों के अनुकूल क्रम पद्धति है। प्रारम्भ में विवाह सम्बन्धी अनेक आवश्यक बातों को भी खोला गया है। ३–००

गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला २७

दुर्गापूजन-पद्धतिः

लेखक—वेदाचार्य पण्डित वेणीराम शर्मा गौड़

दुर्गा के उपासकों के लिये यह 'दुर्गापूजन-पद्धति' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है। इसमें दुर्गापूजन के वैदिक और पौराणिक दोनों प्रकार के मन्त्र दिये हैं। इस पुस्तक में शतचण्डी-सहस्रचण्डी पाठ की विस्तृत हवनादि विधि तथा पूर्णाहुति आदि के मन्त्र भी दिये गये हैं। पुस्तक के अन्त में 'परिशिष्ट-भाग' दिया गया है, जिसमें दुर्गा के पाठ, हवन, बलिदान, पूजन सामग्री आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ज्ञातव्य विषय दिये गये हैं। इस प्रकार की सर्वश्रेष्ठ दुर्गापूजन-पद्धति का मूल्य लागत मात्र रखा गया है।

मूल्य ५–००

प्राप्तिस्थान—चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी–२२१००१
शाखा—बंगलो रोड; ९ यू. बी. जवाहर नगर; दिल्ली–११०००७
फोन :—२२१६१७